

वीर सेवा मन्दिर
दिल्ली



क्रम सख्या _____

काल न० _____

खण्ड _____

❀ विषय सूची । ❀

—दीपावली—(ले० एक प्रेमी)...	६५
२—वर्त्तमान काल—(ले० सम्पादक) ...	६७
३ प्रेम—(ले० श्री कन्हैयालाल जी) ...	७७
४—इस्लाम में विकास और जन्मान्तर—(ले० श्री० रामदासजी गौड़, एम० ए०) ...	७८
५—लेखनी—(ले० श्रीयुत "दास") ...	८०
६—धन्ना और शालिभद्र—(ले० श्री रूपनारायण जी पाण्डेय)	८१
७—आत्माभिमान—(ले० श्री "दास") ...	८६
८—आहिंसा—(ले० श्री अध्यापक जङ्गलबख्श जी) ...	८७
९—पञ्चानन—पञ्चक—(ले० श्रीमान् माधव मुनि जी) ...	८६
१०—जैन-धर्म-मीमांसा—(ले० श्री विरूपाक्ष घडियर) ...	८७
११—मेघ चरित्र—(ले० श्री ए० रामचरित उपाध्याय) ...	११५
१२—जड और चेतन—(ले० श्री महावीरप्रसादजी भीवास्तव)	११६
१३—पद्माक्ष कन्दन—(ले० श्री रूपनारायण जी पाण्डे)	१२५
१४—सम्राट् अशोक—(ले० श्री मोतीलाल जी जैन एम० ए०)	१२६
१५—बिना सम्यक्त्व मिथ्याऽनुष्ठानम्—(ले० श्रीमान् शताव- धानी जैनमुनि पण्डित श्री रत्नचन्द्र जी)	१३०
१६—धर्म का मर्म—(ले० श्रीयुत सनेही) ...	१३३
१७—जाति-अनुराग—(ले० श्री कन्हैयालाल जी जैन) ...	१३४
१८—प्रेम—(ले० श्री कृष्णलाल जी वर्मा) ...	१३५
१९—धर्म परीक्षा—(ले० श्री "त्रिशूल") ...	१४०
२०—जैन धर्मोप-निरसन—(ले० श्री विरूपाक्ष घडियर)	१४७
२१—श्री ज्ञान जयकार—(ले० श्री स्वामी हरिहरानन्द जी)	१५३
२२—जैन-पथ-प्रदर्शक—(ले० श्री रामचरित उपाध्याय) ...	१५४
२३—क्या हमें जीना है—(ले० श्री बाड़ीलाल मोतीलाल शाह)	१५५
२४—प्रार्थना—(ले० श्री कृष्णलाल वर्मा "प्रेम") ...	१६३
२५—ध्यान—(ले० श्री पूर्णचन्द्र जी जैन एम० ए०) ...	१६४
२६—विविध विषय	१६६
२७—साहित्य अवलोकन	१७२
२८—चित्र परिचय	१७४

❀ निवेदन । ❀

(१) जैन-पथ-प्रदर्शक का यह दीपावली का विशेषांक शान्ति प्रेस के मैनेजर की कृपा और परिश्रम से दीपावली पहिले ही छप कर तैयार हो चुका था लेकिन हमने जो रंगीन ग्लाइल के लिए बनवाया था उसके बनने में ही इतनी देर लगी इससे इतना विलंब हुआ है ।

(२) हम जैन पथ-प्रदर्शक के कृपालु मुनि महाराजों, संरक्षकों, सहायकों, ग्राहकों, और लेखकों से सविनय निवेदन करते हैं कि आप इसको पढ़ कर अपनी सम्मति लिखकर अवश्य ही भेजने की कृपा करें जिससे हमारा उत्साह बढ़े ।

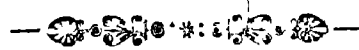
(३) हम अपने सहयोगियों से भी इस अंक की समालोचना करने की प्रार्थना करते हैं और साथ ही परिवर्तन के लिए भी आशा करते हैं । यदि परिवर्तन स्वीकार न हो तो कम से कम जिस अंक में इस हमारे विशेषांक की समालोचना की गई हो उस अंक को भेजने की तो अवश्य ही कृपा करें ।

(४) जैन-पथ-प्रदर्शक की निर्भीकता और न्याय नीति को देख कर हमारे मित्रों की यह इच्छा है कि इसको पाक्षिक कर दिया जाय । उन इष्ट मित्रों को आज हम यह हर्ष समाचार सुनाते हैं कि हम बहुत ही शीघ्रता के साथ इसको पाक्षिक करेंगे । अतएव आप अपने मित्रों को ग्राहक बनाकर हमारा उत्साह बढ़ाइयेगा । पाक्षिक पत्र का वार्षिक मूल्य ३) ६० रखने का निश्चय किया गया है ।

(५) पाक्षिक जैन-पथ-प्रदर्शक में आपको नये और ताजे समाचार पढ़ने को मिले ऐसा हम प्रबध कर रहे हैं । और इसके लिए प्रत्येक शहर में हम सम्वाददाता बना रहे हैं ।

(६) जिन २ महानुभावों के पते से हमने अपने पूज्य मुनि महोदयों की सेवा में विशेषांक भेजा है आशा है वे महाशय कार्यालय पर कृपा करके उनकी पवित्र सेवा में पहुँचाने की कृपा करेंगे और एक सूचना हमें भी देने की कृपा करेंगे ।

जैन-पथ-प्रदर्शक ।



नाणस्म सवस्म पगासणाण, अन्नाण मोहस्म विवज्जणाण ।

गगस्स ढोसस्म य संखएणं, एगंतं सोक्खं समुत्तेइ मोक्खं ॥

(भा गणना दव)

धर्प ३



दीपावली वा विशेषाङ्क ।



अङ्क ३

दीपावली ।

[लेखक—“एन प्रेसी” ।]

* १ *

दीपावली जगी हे वह दीप याद आया ।

वह मुक्ति की मही का अरुणीप याद आया ॥

जिसका प्रताप फेला तम तोम को मिटाके ।

जिसके निकट जुडे थे प्रेमी पतङ्ग आके ॥

* २ *

पर* मोह के जला के मति ज्ञान मे अचल की ।

जी की हउस निकाली मन कामना सफल की ॥

वह दीप ज्योति जिसकी जग में झलक रही है ।

उस ज्ञान के निलय का निर्वाण दिन यही है ॥

* पौखे ।

* ३ *

यह वह पावित तिथि है अज्ञान तम हटाये ।

उस ज्ञान दीप का हम मन में प्रकाश लाये ॥

मद, मोह, लोभ, माया, अज्ञान हार दें हम ।

कलिकाल घात में है पर दाव मार दे हम ॥

* ४ *

प्यारे उचित नहीं, धन, खेलो जुआ नशाओ ।

चूको न चौक में तुम नक्की दुआ नशाओ ॥

कब तक तिया^१ तिया तुम प्यारे बने रहोगे ।

पथ एक ही तुम्हारा क्या एक तुम न होंगे ॥

* ५ *

भ्रमते कहा तलक तुम ससार में रहोगे ।

इस मोह की नदी में कब तक पड़े बहोगे ॥

खट राग और छोड़ो हो धर्म राग की लय ।

यह तान ज्ञान की है “भगवान वीर की जय”

१ अलग अलग ।



वर्त्तमान काल ।



त और भविष्यत् कालांशो के मध्यवर्त्ती अत्यन्त सूक्ष्म समयांश को यद्यपि वर्त्तमान कहते हैं परन्तु विचारशील विद्वानो की दृष्टि में यह कालांश इतना सूक्ष्म है कि जिस की सीमा का निर्धारण करना बुद्धिमानो के लिये भी कष्टसाध्य है क्योंकि इसकी दोनों सीमाओं को दवाने के वास्ते भूत और भविष्यत् नाम के दो सजातीय शत्रु इस के आगे पीछे फिरा करते हैं, वर्त्तमान की इस दुर-वस्था को देख कर ही व्याकरण के प्रशिद्धाचार्य श्री पाणिनि मुनि को अद्यतन (गत अर्द्धरात्रि से आगामिनी अर्द्ध रात्रि तक का समय) और अनद्यतन कालों की कल्पना करनी पड़ी थी ।

यद्यपि कालों के यह तीनों भाग अस्मदादिक् भागारिक जनों की दृष्टि से ही माने जाने हैं क्योंकि उच्च दृष्टि वाले योगी जनों की दृष्टि में तो केवल एक ही काल है उरा में दृष्टान्त यह है कि जैसे आगरे के लिये एक तोप का गोला छोड़ा जाय और उस के दर्शकों में से तीन को आध आध मील के फासले से सड़क पर और एक को ताजबीबी के रोजे की मीनार पर खड़ा किया जावे अब नीचे तीन दर्शकों में से पहिले से पूछिये कि गोला कहाँ है तो वह कहेगा कि चला गया अर्थात् उस की क्रिया भूतकालिक, मध्यस्थ की दृष्टि में वर्त्तमान और अन्तस्थ की दृष्टि से भविष्यत् है परन्तु रोजे की मीनार पर खड़ा हुआ जो दर्शक है उस से पूछिये तो वह यही कहेगा कि गोला जा रहा है अर्थात् उस दूर व्यापिनी दृष्टि में एक ही काल है ।

अस्तु, जब कि संसार के प्राचीन आचार्यों ने भी अपने कार्य की सिद्धि के वास्ते एक अमूर्त काल की अनन्त काल्पनिक संज्ञाएं नियत कर ली हैं तब हम अपनी अभीष्ट वर्णना के वास्ते भूत और भविष्यत् काल के कुछ अंशों को वर्त्तमान में मिश्रित क्यों न करें। लौकिक व्यवहार में भी देखा जाता है कि यदि किसी से पूछा जाय कि देवदत्त क्या करता है तो वह कहेगा कि "रसोई करता है" परन्तु रसोई करने में आग सुलगाने आदि से लेकर रोटी सेकने तक की सब क्रिया मिश्रित है जिन में से कुछ क्रियाएं भूत काल में और कुछ भविष्यत् में मिल जाती हैं परन्तु उन सब का ज्ञान केवल एक वर्त्तमान काल की "पचत्ति व पकाता है" क्रिया से हो जाता है इस ही प्रकार से हमारे अभीष्ट वर्णन को भी पाठकवृन्द समझ ले।

इस सिद्धान्त को प्रायः सभी विद्वान् स्वीकार करते हैं कि काल सब कार्यों का साधारण कारण है लोक में भी प्रायः सब लोग कामों के बिगड़ने पर यही कहते हैं कि "भाई क्या करे समय ही ऐसा आ गया" महाभारत में भी सामयिक जनों के व्यवहारों को देखके महाराज धृतराष्ट्र ने अपने मंत्री सञ्जय से यही प्रश्न किया था कि समय कैसे बगला है ? उ। के प्रश्न का तात्पर्य यही था कि लोक में जो यह कदावत् प्रसिद्ध है कि अमुक समय में सब मनुय सुकर्म ही किया करते थे परन्तु अब समय बिगड़ गया इसमें कुकर्मों की वृद्धि हो गई, सञ्जय ने बताया कि जब स्वरूप काल मनुयों के कर्मों को कैसे बदल देता है ? इस प्रश्न के उत्तर में सञ्जय ने कहा कि—

काला हि कारणं राज्ञा राजा वा काल कारणम् ।
इति ते सशयोमाम् ब्राजा कालस्य कारणम् ॥
राज्ञि धर्मिणि धर्मिष्ठा पापे पापाः समे समाः ।
प्रजास्तदनु वर्त्तन्ते यथा राजा तथा प्रजाः ॥

अर्थात् काल राजा का कारण है या राजा काल का कारण है ? यह सन्देह तुम को न रहना चाहिये क्योंकि निश्चय यही है कि

काल का कारण राजा है । अभिप्राय यह है कि जब राजा धर्मात्मा होता है तब उस की प्रजा भी धर्म करती है, राजा जब पापी होता है तब उस की प्रजा भी पाप परायण हो जाती है और जब राजा सत्कर्मों वाला होता है तब प्रजा भी वैसे ही सत्कर्म करती है फलितार्थ यह है कि सब काल और सब देशों की प्रजा अपने राजा का अनुकरण किया करती है ।

इस सिद्धान्त को पुष्ट करने वाला एक दृष्टान्त हम को याद आया है यद्यपि यह दृष्टान्त प्रसिद्ध है तो भी हम प्रसङ्गवश उस का लिख देना यहाँ आवश्यक समझते हैं ।

(दृष्टान्त ।)

एक समय मुगल सम्राट् शाह जलालुद्दीन अकबर अपने कुछ सामन्तों को साथ ले कर मृगया (शिकार) करने जंगल को निकले । एक दिन शिकार खेलते खेलते सब बिछुड़गए और सम्राट् अकेले रह गये, ज्येष्ठ मास का मध्याह्न कैसी विकट गर्मी का समय होता है उस का अनुभव हमारे सब ही सुविज्ञ पाठकों को होगा अतएव उस का विशेष वर्णन करना व्यर्थ प्रतीत होता है । बादशाह ने प्यास से व्याकुल हो कर चारों ओर देखा परन्तु किसी कुए बावड़ी का पता न लगा किन्तु सामने हरा भरा ऊख का एक खेत दीख पड़ा सम्राट् अकबर इस आशा से खेत में पहुँचे कि खेत वालों के पास अवश्य जल होगा परन्तु वहाँ जा कर देखा तो एक वृद्धा स्त्री के सिवाय और कोई नहीं है । सम्राट् ने वृद्धा से विनय पूर्वक कहा कि, माता ! मैं बहुत प्यासा हूँ थोड़ा पानी पीन को दो, बुढ़िया ने उत्तर दिया कि बेटा ! पानी तो मेरे पास नहीं है पर तुम्हारी प्यास बुझाने लायक शर्बत है अगर तुम्हारे पास छुरी हो तो दो मैं अभी शर्बत लाती हूँ । बुढ़िया न अकबर से छुरी ले कर एक गन्ने में मारी और कटोरा लगा दिया । थोड़ी ही देर में कटोरा खूब भर गया जिस को पीकर अकबर बहुत प्रसन्न हुए । उस पीकर के सम्राट् अकबर खेतकी मेड़ पर बैठ कर विचारने

लगे कि ऐसे उपजाऊ खेत पर बहुत अधिक लगान होना चाहिये आगरे जाकर मन्त्रियों से लगान बढ़ाने के लिए सन्मति लूना । थोड़ी देर में अकबर को फिर प्यास लगी और उसने फिर रस लान की प्रार्थना की परन्तु इस बार बुढ़िया ने जो उस में छुड़ी मारी तो एक जगह से कटोरा भर रस न निकला फिर दूसरी जगह मारी ऐसे तीन चार जगह मारन पर कटोरा भर रस निकला । रस की इस कमी को देख कर सम्राट् अकबर को बड़ा ही आश्चर्य हुआ । उन्होंने बुढ़िया से पूछा कि अम्मा ! सच बताओ कि ईख का रस थोड़ी देर में क्यों कम होगया ? बुढ़िया ने एक सांस भरकर उत्तर दिया कि बेटा ! यहा के किसी हाकिम की या बादशाह की नियत बिगड गई है इस से ही ईख का रस सूख गया । बादशाह ने बुढ़िया से फिर पूछा कि माता ! बादशाह की नियत से और ईख से क्या सरोकार ? भला बतलाओ तो कि आगरे के महलों में बैठे हुए बादशाह की नियत बिगड़ने से इतने दूर के जङ्गल की ईख कैसे सूख जाती ?

बुढ़िया ने कहा बेटा ! यह सारी जमीन भगवान की है वही बादशाह को रैयत के पालने के वास्ते ज़मीन सौंप देता है जब बादशाह के दिल में रैयत का हक मारने की बड़ नियत होती है तब ही सब की नियत को जानने वाला भगवान् धरती से रस को खींच लेता है । बुढ़िया की बातों को सुन कर बादशाह मूँन में लज्जित होकर चल दिया ।

इस दृष्टान्त से हमारे पाठक भलीभांति समझ गये होंगे कि राजा के और राज पुरुषों के आन्तरिक भावों का और आचरणों का चेतन प्रजा पर ही नहीं वरन् प्रकृति पर और प्राकृत पदार्थों पर भी पूरा पूरा प्रभाव पड़ता है । आज कल भारत भूमि में जो रेल, तार, मोटर, नहर, और विमानों की अधिकता देखी जाती है और उन से प्रजा को अनेक सुखों की प्राप्ति हो रही है यह ब्रिटिश नरेश और उन के कर्मचारियों के प्रयत्नों का ही प्रताप है वास्तव में यदि

अंग्रेजी राज्य के साथ उपर्युक्त कार्यों का विस्तार न होता तो आज कई करोड़ अर्द्ध शिक्षित बाबू लोग और करोड़ों ही अशिक्षित चपरासी तथा कुली लोग जो इन कार्यों में लगे हुए हैं भूखो मर जाते । वर्तमान काल के ऐसे ऐसे अपूर्व कामों को देख कर ब्रिटिश राज्य और उसके सञ्चालकों की जितनी तारीफ की जाय उतनी ही थोड़ी है । इस के अतिरिक्त इस राज्य ने भारत भूमि में शिक्षा का इतना अधिक प्रचार किया है कि इस से पहिले के मुसलमानी राज्य में उस का शतांश भी न था ।

पाठक वृन्द ! आप देखते हैं कि प्रकृति की कैसी अद्भुत रचना है कि, जो मनोहर वृक्ष सुगन्ध सने मनोभिराम सुमनों से प्रफुल्लित हो रहा है उस गुलाब की कोमल शाखाओं को भी सृजनहार ने कटकाकीर्ण कर के अपनी किसी अचिन्तनीय नीति का परिचय दे दिया है । हम के अतिरिक्त ऋतुओं के परिवर्तन उन ललित लताओं के कोमल कुमुदों से वन को सुगन्ध सागर और कभी सूखे पत्तों के ढेर कर के कूड़े कचरे का विभित्सालय बना देता है ।

बहुत से ग्रन्थकार और इतिहास लेखक किसी राजा के राज-त्वकाल को भला और किसी को बुरा लिख देते हैं परन्तु हम ऐसा काना नहीं चाहते क्योंकि

स्वार्थ और जातीय पक्ष

ही मनुष्य को भला और बुरा कहलाने के कारण हैं अन्यथा स्वयम् देखते हैं कि माली वृक्ष को लगा कर सन्तुष्ट होता है और बढ़ई वृक्ष काट कर, जुलाहा कपड़े को बता कर दर्जी उसे काट कर सन्तुष्ट होता है । अब कहिये किस के काम को बुरा और किस के को भला कहा जाय ? क्योंकि इनमें से किसी का काम निन्दा के योग्य नहीं है । हां जो केवल स्वार्थ से न्याय को त्याग कर काम किया करता है वह निन्दा के योग्य होता है और जिस में परार्थ का अंश होता है वह कर्म निन्दा करने योग्य कदापि नहीं होता ।

भारतवर्ष का एक समय वह था कि एक दिन उद्दालक आदि ऋषि महाराज जनक से ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति की लालसा से उन के नगर में गये, महाराज ने यथायोग्य सत्कार कर के ऋषियों से प्रार्थना की कि महाराज ! आज ठहरिये, मैं कल प्रातःकाल आप को ब्रह्म का उपदेश करूंगा, ऋषि लोग ठहरने में कुछ सङ्कोच करने लगे, तब महाराज ने कहा.—

न मे स्तेनो जनपदे न कश्च्यो न मद्यपः ।

नाना हिताग्निर्ना विद्वान् न स्वैरी स्वैरिणी कुनः ॥

अर्थात् मेरे राज्यमें न कोई चोर, न कोई कायर कपूत है, न कोई नशेबाज हैं, न कोई मूर्ख है, जब कि मेरे राज्य में व्यभिचारी पुरुष ही नहीं तो व्यभिचारिणी स्त्री कहाँ हो सकती है तात्पर्य यह है कि जिस राज्य में ये चोर आदि होते हैं वही कुराज्य ऋषियों के रहने योग्य नहीं होता ।

सब देश और समस्त कालों की प्रजा को जिस वस्तु की आवश्यकता है वह प्रधान वस्तु दया है क्योंकि दया के प्रभाव से ही माता अपनी सन्तान को पालती है यदि माता सन्तान पर दया न करे तो संसारमें किसी प्राणी का जीवन न रहे । यदि विचारसे देखा जाय तो न्याय भी दया के बिना नहीं हो सकता क्योंकि जो राजा दुष्टाचारी जनो को कारागार या अन्यान्य दण्ड देता है उस का मूलोद्देश्य भी यही होता है कि मनुष्य दीन प्राणी को न सतावे । यह दया का व्यवहार समस्त प्राणियों के साथ राजा को करना चाहिये इस ही दया धर्म के अन्तर्गत अहिंसा भी आ जाती है परन्तु इस दया धर्म में जहां स्वार्थ और जातीय पक्ष आ जाता है वहां से न्याय और दया दोनों दूर हो जाते हैं । अब वर्तमान समय के राज्य में इन दोनों का जैसा बर्ताव हो रहा है उस का हम स्वयं कुछ वर्णन करना नहीं चाहते वरन् सर्कारी रिपोर्ट से और एक अंग्रेजी अखबार से उन की दशा को दिखलाये देते हैं, ता० ७ जौलाई १९१९ ई० का लीडर लिखता है.—

जैन-पथ प्रदर्शक—



स्व. गंगादास शर्मा

गंगादास लाला मुखर्जी मठायजी.

(दिल्लीवादी स्टेट.)

संस्कृत प्रेस, बल्लभराज-आगरा ।

जैन-पथ प्रदर्शक



स्वर्गवामी राजा बहादुर

लाला मुखदेव सहायजी के मुपुत्र सेठ ज्वालाप्रसाद जी,

(हैदराबाद स्टेट)

सरस्वती प्रेस, बेलनगज—आगरा ।

WHENEVER the death of an Indian is caused by a European it is generally ascribed to accident, or rash and negligent act, and after there is a trial, he is either let off or sentenced to a small fine. Sometimes he may get few months' imprisonment. The trial is held with the aid of a European jury whose verdict can never be perverse. It is only when Indians demand the right of trial by jury that serious objections, without any convincing proofs, are brought forward on the score of Indian jurors being prone to deliver perverse verdicts, thus depriving justice of its due. So far as we are aware, not a single European has been hanged or transported since the establishment of British rule in this country for causing the death of an Indian, although such deaths have not been of rare occurrence. If as a result of such cases Indians have arrived at certain conclusions regarding the value of their lives in the British eyes, can they be blamed for it? It has been noted throughout India that because certain members of an excited mob brutally assaulted an English missionary lady in Amritsar during the recent disturbances, a number of them, 6 or 7—we do not remember the exact number—were sentenced to death by the Martial law commission by which they were tried, although the lady was able to sail for England not many days after the revolting treatment to which she was subjected. No one in the least condones the dastardly acts of those who even roughly touched the person of the lady. For Indians as a class have a strong instinctive abhorrence of all violent acts against a member of the

fair sex, to whatever race she may belong. But in spite of it they cannot but regard death sentences for brutal assaults on an English lady committed in a state of excitement as outrageous and inhuman. If excitement was no excuse in the case of those who were sentenced to death in the above case, it ought not to have furnished a justification for the shooting of an Indian fruit-seller by Lieutenant Plunkett which resulted in the former's death. The account of the trial as wired by the Associated Press, in which Lieutenant Plunkett was charged with a rash and negligent act only, affords the most painful reading. What happened ? A certain number of third class passengers at the Havelian railway station had got into a train without tickets. Lieutenant Plunkett was asked to remove these passengers and make them quit the platform. One of these was Khuda Buksh who was shot. The evidence of the station master relating to incident was as follows:—

Lieutenant Plunkett with the ticket collector began turning out the men. Witness then saw Khuda Buksh (deceased) coming out of the train. On being ordered to go by the accused, he ran towards the passenger hall gate. When there, a Gurkha infantry man stopped Khuda Buksh, after which Khuda Buksh ran towards the guards brake van. Lieutenant Plunkett had all this while been pursuing the man (Khuda Buksh) and calling out to him to stop. Khuda Buksh jumped down on the metals and went to the other side of the train. The accused jumped down after Khuda

Buksh. After a minute witness heard two shots in rapid succession.

It is clear from the above evidence that the deceased came out of the train and wanted to go out, but was stopped by a Gurkha soldier, that he was pursued by Lieutenant Plunkett, and that he was very likely frightened, as an Indian of his class would be, when pursued by a British officer whose orders probably he did not understand. Where was the occasion in all this of deliberately bringing out the revolver and firing, when the man was trying to seek shelter, or was at all events flying? Major Sanders referred to 'certain urgent and secret orders' received by the officers the details of which do not appear to have been disclosed. But light was thrown upon their nature by Major Sanders and the accused himself. The former stated that 'every officer was given' 'wide discretion and the latter stated that the commandant told the officers when they were before him that orders emanating from the higher authorities were 'meant to be acted upon for defence. Did the act of the accused show that he exercised any discretion at all, or that he acted in self-defence? And yet the jury returned a verdict of 'not guilty'. Well, if such cases produce racial bitterness among Indians, they are not in the least responsible for it. Was the shooting not even a rash and negligent act? Was it a mere accident for which the accused could not be held responsible? What would have happened if an Indian has similarly pursued an Englishman and fired a revolver and accidentally hit him.

अब यह भी देखना आवश्यक है कि जिन बे जवान पशुओं से भारतवासियों को घी व दूध और गोबर आदि बल वर्द्धक वस्तुओं का उपयोग प्राप्त होता है उन पर इस राज्य में कितनी दया की जाती है, यह तो सब ही लोग जानते हैं कि जितना पशु वध इस राज्य में होता है किसी दूसरे राज्य में नहीं होता । भारतवर्ष में तो ऐसा पशु वध कभी नहीं हुआ था । यहां से द्वीपान्तरों को मांस नहीं जाता था आजकल भारतवर्ष से कई लाख मन मांस सुखा सुखा कर द्वीपान्तरों को हर वर्ष भेजा जाता है । इस के अतिरिक्त भारतवर्ष में प्रति वर्ष १० गौ और बाल सैकड़ों के हिमाय से मारे जाते हैं । इस घोर निर्दयता का प्रति फल यह है कि जो दूध पहिले तीन पैसे सेर बिकता था आज छै आने सेर बिकता है, जो घी पहिले चार सेर बिकता था वह अब छ' छटांका बिक रहा है । आज कल भारतवर्ष में जो दुर्भिक्ष फैला हुआ है उस का प्रधान कारण पशु वध के अतिरिक्त और कुछ नहीं है क्योंकि आज कल भारतवर्ष की ९६०० एकड़ भूमि में खेती होती है और पशुओं को चराने के वास्ते केवल ३५२ एकड़ भूमि छोड़ी जाती है । ऐसी दशा में बेचारे पशु कुछ भूख से कुछ रोगों से और कुछ पेट की खानि मारे जा रहे हैं । अब हमारे पाठकों का समझ लेना चाहिये कि पूर्वोक्त श्लोक चरितार्थ होता है वा नहीं ।



प्रेम

(ले. — भीयुन कन्हैयाखान जी जैन, कम्तला ।)

समस्त संसार तुम्हें स्वर्गीय तथा अलौकिक रत्न कहता है । सांसारिक सभी कोटि के कर्मों के तुम्हीं जन्मदाता, विधाता और भ्राता हो । विश्व का उत्पादन, भरण पोषण और लयी-करण तुम्हारी ही भ्रुकुटि-विलास का कीडामय-विकास है । वस्तुतः तुम हृदय के एक अनिवर्चनीय, अज्ञेय अव्यक्त और नित्य नव्य भाव हो । तुम्हारे 'प्रेम-पयोनिधि में धँसिके' निकलने को जी ही नहीं चाहता । सदैव तुम्हारे तरल तरङ्गमय सुधासिन्धु में निमग्न रहने की ही इच्छा होती है । हृदय-मधुप सदैव तुम्हारे उल्लास, ब्रीडा, शान्ति तथा अनन्त सुगंधता-सकरन्द का पान करने के लिये उत्सुक रहता है । तुम विश्व के प्राण, भय लोक-त्राण, तथा मनोज के कुमुद-वाण हो इस में सन्देह नहीं । जहाँ तुम हो वहाँ अनन्त सुख, शान्ति, क्षमता, ऐक्य, विश्वास, भक्ति और उन्नति है पर जहाँ तुम उपस्थित नहीं वहाँ क्रूरता, कपट, विश्वासघात, स्वार्थ माधन छलछद्म, उत्क्रान्ति, अत्याचार, पाश-विक काण्ड, पैशाचिक वृत्ति तथा पाप तापमय कर्मों के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है । यह सब कुछ है किन्तु हाय ! लिखते हुए कर कुरिठत, लेखनी लाचार, भावभङ्गी होती है कि तुम्हारी कोटि मुकोमल-मुमन-मुपमा-धारिणी कलिका में 'विरह' रूपी शूल की भयावनी हूल प्रस्तुत है तो क्या तुम्हें सर्व सद्गुण-संयुत तथा सर्व सुख मूलक कहना निरी भ्रान्ति ही है ? तुम संयोगी के हृदय में वियोग का कण्टक चुभा कर उसका निखिल जीवन दुःख ग्लानि तथा नरकाधिमय कर देते हो । पर हो तुम पूरे 'उस्ताद' इतने कष्ट प्रदायक होने पर भी तुम विलक्षण आकर्षण-शक्ति रखते हो । जिसे तुम जितना सन्तप्त करते हो तुम्हारा सत्य उपासक उतना ही अधिक तुम्हारी आराधना में निमग्न होता जाता है । धन्य हो तुम और धन्य तुम्हारी तल्लीनता ।



(क्षेत्र-प्राप्त गन्तान मा गोड ॥१०॥ ॥०॥ पाकेस निन्द विष्णवपन्थव ।)



दृष्टौ जैनी आदि पाय सभी भारतीय धर्म-प्रतिपादक जन्मान्तर्वाद को अपने तर्क-शास्त्र के गौरव का कारण समझते हैं और साधारणतया पाश्चात्य वैज्ञानिकों को इस बात का पक्का रहता है कि विकासवाद पाश्चात्य सम्पत्ति है, पाश्चात्यो का ही आविष्कार है, उदरविन की रोज है। इन बातों में मौलिकता का दावा करना धर्म और विज्ञान दुर्विद्वयों का ही काम है। दोनों पक्षों के समर्थक बहुधा यह समझते हैं कि इस्लाम धर्म इन दोनों सिद्धान्तों में अनभिज्ञ है। जो लोग मुसलमानों की फिटारफी में परिचित हैं वह ऐसा समझने वालों की डबल अनाभिज्ञता पर मुन्कशाकर रह जाते हैं, क्योंकि इन बातों पर मगड़ना विद्वत्ता नहीं है।

मुसलमान वेदान्तियों में जलालुद्दीन रूमी मअतवी बड़े ऊँचे दर्जेके सूफी माने जाते हैं। उन्होंने वेदान्त पर एक भारी ग्रन्थ लिखा है, जिसे सूफी लोग कहते हैं कि वस्तुन कुरान शरीफ के मर्मों का पहलवी (फारसी) उल्था है। इसी महत्व के ग्रन्थ में एक जगह कुछ ऐसे महेश के पद हैं जिन में जन्मान्तर और विकासवाद दोनों का

प्रतिपादन होता है । मूल का देना यहाँ हिन्दी पाठकों के लिये अनस-
गत समझ कर उसका उद्गू समवृत्तानुवाद देता हूँ ।

मिस्त सज्जा बारहा मैं उग चुका ।
सात सौ सत्तर तनों में रह चुका ॥
आजमाया मौत ही है जिन्दगी ।
जिन्दगी से छूटना पायन्दगी ॥
जब जमादी से मरा नामी हुआ ।
मर के सज्जे से मैं हँवां हो रहा ॥
झाड़ी हँवानी तो फिर इन्सां हुआ ।
मरने से गुमगरतगी का खोफ़ क्या ॥
झाड़ इंसानी अगर मैं फिर मरूँ ।
हूँतिगए रूहानी ज़ेरे जाँ करूँ ॥
तब भी गर कुवाँ करूँ मैं उस प' जाँ ।
ताव क्या पाये मुझे वहमो गुमाँ ॥ ❀

* जो पाठक इसकी - ६ भी कठिन समझ उनके लिये दोनों में उन्हीं
यहाँ का भाषानुवाद देह हूँ -

चास स्वर्गम यदि निश्व में मैं त्यज्यो बहुत बार ।
रह न जगा पुनि पुनि धरयां स्तरि सात हजार ॥
परलोक में बहू निनि यहै जीवन मरन समान ।
नै यदि जीवन तें छुटौ, होवै अनन्त अमान ॥
मरि कै खनिनन जगत तें भयो वनस्पति जाय ।
मरेवै वनस्पति विश्वतें रहेवै जन्तु तनु पाय ॥
जन्तु जगत तें मरि बहुति आयेवै नरनन माहिँ ।
मरिवे ते पुनि मय कहा जिय उन्नति पथ जाहिँ ॥
यदि अजहँ यह देह तजि सजौ मनुज सत्तार ।
रवन सम मन धारिकै रहौ इन्द्र दरबार ॥
पनेहुँ पै मूर मनहु महेँ जौ हरिहित मरि जावै ।
होवै नरे मन बुद्धि से सागुन अरुण अनावै ॥

आधुनिक विज्ञान ब्यों ब्यों प्रकृति के रहस्यों की तहें खोलता है उसे जीवन के सूक्ष्म से सूक्ष्म रूप दीखते हैं । सर जगदीश वसु ने सारे विज्ञान संसार में यह सिद्ध कर दिखाया है कि जिसे संसार जड़ पदार्थ कहते हैं वह भी "जीवन" से खाली नहीं है । सारा विश्व सजीव है । पानी की एक थूद लेकर एक वैज्ञानिक अणुवीक्षण यन्त्र में देखता है तो उसे आलपीन की नोक भर जगह में अगणित प्राणियों से परिपूर्ण संसार दिखाई पड़ता है—उसी तरह जैसे भगवान् रामचन्द्र के मुखमें माता कौसल्या ने और भगवान् कृष्णचन्द्रके मुखपरविन्द में यशोदा जी ने सारा विश्व देखा था । आज विज्ञान से यह प्रत्यक्ष हो चुका है कि इन्हीं आणविक सूक्ष्म जीवों से विकास पाने पाने हार्थ और हल की तो हस्ती ही क्या है, प्राचीन कालके महाकाय दानव और संसारके भारी से भारी महात्मा, देवता, अवतार बुद्ध और अर्हन् सभी हुए हैं ।

मौलवी मअनवी ने जिन रहस्यों का अपने इन धाड़ें से पदों में उद्घाटन किया है, वह सचमुच तहबनह है । पाठक जिनका ही विचार करेंगे उतना उन के हृदय में विकासवाद का विकास होगा ।

—:~:—

❀ लेखनी । ❀

पुरख-पुंगी प्रेम की आनन्द की प्यारी लड़ी ।
अन्तःकरण के भाव-चित्रण की महासुन्दर छड़ी ॥
तलवार से भी धार तेरी वार गहरं मारती ।
वज्र का तिनका करं वीरेन्द्र भूमि-पल्लारतो ॥
शिर तेरा चीरा गया और जीभ भी काटी गई ।
रक्खी गई मन्दक मे हर भांति ही डटी गई ॥
श्रुष्टता तूने न कम की नित्य बढ़ती ही गई ।
कज्जल-समुद्र डुबाये सुरत कृष्ण भी करदी गई ॥

—दास ।



एक बूंद पानी की तस्वीर ।

कैप्टन स्कॉर्सबि साहब ने खुर्देवीन द्वारा एक पानी की बूंद में २६६५० त्रस (चलते-फिरते) जीव देखे हैं और उसकी तस्वीर भी उन्होंने इसी प्रकार की “ भिद्ध पदार्थ विज्ञान ” नामकी पुस्तक जो गवर्नमेंट प्रेस इलाहाबाद में छपी है, दी है ॥ अतएव सुज्ञान इन जीवों पर करुणा विचार कर पानीका दुरुपयोग न करेंगे ।



एक बूंद पानी की तस्वीर ।

कैप्टन स्कॉर्भावि साहब ने खुदचीन द्वारा एक पानी की बूंद में २६६५० त्रस (चलते-फिरते) जीव देखे हैं और उसकी तस्वीर भी उन्होंने इसी प्रकार की “ सिद्ध पदार्थ विज्ञान ” नामकी पुस्तक जो गवर्नमेंट प्रेस इलाहाबाद में छपी है, दी है ॥ अतएव सुझन इन जीवों पर करुणा विचार कर पानीका दुरुपयोग न करेंगे ।

Printed at the S. S. J. P. Aymer.

ब्याही गई उन्हीं को, उत्सव धूमधाम से हुआ महान ॥
धन्ना जी के आठ रित्रियां थी, उनमे हुई सुभद्रा एक ।
सभी सती थीं, बुद्धिमती थी, सबमे थे गुण सहित बिबेक ॥५॥



[ले०-श्रीयुक्त रूपनारायण जी पांडेय, कविरत्न ।]

मगधदेश में एक "राजगृह" नाम नगर अति सुन्दर था ।
जिसका राजा महाप्रतापी श्रेणिक धर्मधुरन्धर था ॥
वहो सेठ गोभद्र नाम का अमित द्रव्यपति रहता था ।
उसकी स्त्री थी भद्रा, उसको सेठ हृदय से चहता था ॥ १ ॥

पहले कन्या हुई सेठ के, नाम सुभद्रा कल्याणी ।
कानो मे ज्यो सुधा सीचती, उसकी मृदु मीठी वाणी ॥
फिर उत्पन्न हुआ सुत सुन्दर, शालभद्र यह नाम हुआ ।
किन्तु सेठका अति सुख लखकर क्रूर विधाता वाम हुआ ॥ २ ॥

कुछ ही दिन बीते थे, सहसा सेठ स्वर्ग को चले गये ।
यहां पुण्य के वृक्ष बड़े तो अंत समय तक फले गये ॥
जो 'सुधर्म' नामक अति उत्तम स्वर्गलोक है, उसमे वे,
श्री श्री शक्र इन्द्र जी के प्रिय अनुचर कोषाध्यक्ष हुए ॥ ३ ॥

वह गोभद्र सेठ सुरपुर मे स्वयं सुकृत-सुख थे पाते ।
अपने सुत को सदा वहां से सांसारिक सुख पहुंचाते ॥
कुत्तर एक धन्ना जी सुंदर अतुल धनी धर्मात्मा थे ।
कुल मे श्रेष्ठ सुशील बड़े ही मानी महा महात्मा थे ॥ ४ ॥

शालभद्र की बहन सुभद्रा रूपवती रति-रमा-समान,
व्याही गई उन्ही को, उत्सव धूमधाम से हुआ महान ॥
धन्ना जी के आठ स्त्रियां थीं, उनमे हुई सुभद्रा एक ।
सभी सती थीं, बुद्धिमती थीं, सबमे थे गुण सहित विवेक ॥ ५ ॥

बत्तिस सेठ कुमारी प्यारी शालभद्र ने भी व्याही ।
 सब उनके अनुगत थीं, रहती ज्यों शरीर संग परछाही ॥
 शालभद्र के घर में जब से आई वे बत्तिस नारी,
 शालभद्र के पिता तभी से रत्नपिटारी नित न्यारी ॥ ६ ॥
 तैं तीस, महामूल्य मणिमुक्तामयी भेजत थे, जितमें-
 दिव्य वस्त्र भूषण थे, जो सब सूर्य सदृश दमकें दिन में ॥
 शालभद्र स्त्री सहित जगत के सुख संभोग किया करते;
 और समय पर दीन दुखी का दया दृष्टि से दुख हरते ॥ ७ ॥

× × × × × × ×

एक दिवस उस नगर बीच जौहरी कहीं से आया ।
 रत्न कमल बहुमूल्य बहुत से साथ बेचने लाया ॥
 राज सभा में जाकर उसने रत्न कमल वे दिखलाये ।
 उन्हें पसन्द किया राजा ने, मगर दाम जब सुन पाये ॥ ८ ॥
 तब वापस कर दिये कमल वे, कहा-“हम नहीं ले सकते ।
 इन कमलों का इतना भारी मूल्य हम नहीं दे सकते” ॥
 व्यापारी होकर उदास वह चला वहां से यह कहता ।
 “इस नगरी में लक्ष्मीवाला कोई धनी नहीं रहता” ॥ ९ ॥

शालभद्र की माता ने सुन व्यापारी का वह ताना ।
 बुलवा भेजा उसे उसी दम, कहा-“हमें भी दिखलाना !
 पास तुम्हारे रत्नकमल हैं ऐसे कितने बतलाना ।”
 कहा जौहरीने-“सोलह हैं, इनमें रत्न जड़े नाना ॥ १० ॥
 जितने कमल चाहिये- ले लो, एक बात पत्थर की लीक ।
 सवा लाख सोने की मोहरें दाम हर कमल के है ठीक ॥ ११ ॥

× × × × × × ×

माता जी ने तब कहा-कुछ भी होवें दाम ।
 उसकी चिन्ता कुछ नहीं, किन्तु कठिन यह काम ॥ १२ ॥

मेरे हैं वत्तिस बहू रत्नकमल हैं थोड़े ।
लेकिन ले लूँगी इन्हें, रखदे सोलह जोड़े ॥ १३ ॥
ले यह आझापत्र जा, भंडारी के धाम ।
बीस लाख मोहरें अभी ले ले इनके दाम ॥ १४ ॥
गया जौहरी तो उधर लेने अपने दाम ।
माता जी ने भी इधर लिया यत्न से काम ॥ १५ ॥

× × × × ×

दो दो टुकड़े, एक एक के कर लिये ।
फिर बहुओं को स्वयं बांट कर देदिये ॥
करने को संमान सास का लेलिये ।
बहुओं ने वे कमल खण्ड धारण किये ॥ १६ ॥
एक रात भर पहन सवेरे जब जगी,
निर्मल शीतल जलसे न्हाने वे लगीं ॥
फिर कमलों से पैर पोंछकर, इस तरह—
वे सब फिकवा दिये, भवन का जिस तरह— ॥ १७ ॥
कोई कूड़ा दे निकाल । आई उधर—
भगिन उसने वे उठा लिये देखकर ॥
वत्तिस में से एक खंड को वह पहन,
माड़ू देने गई भव्य भूपति-भवन ॥ १८ ॥

× × × × × ×

भगिन को वह रत्नकमल जो पहने देखा,
ज्यों घन में हो चमक रही बिजली की रेखा ।
राजा ने आश्चर्य चकित होकर फरमाया—
“महामूल्य यह कमल कहां से तूने पाया ?” ॥ १९ ॥
भगिन ने कर जोड़ कहा यो—“सुनिये स्वामी ।
शालभद्र जो सेठ यहां रहते हैं नामी;
पड़े हुए थे ये उनके घर घूरे पर ।
वत्तिस टुकड़े सब ऐसे पाये हैं सुन्दर” ॥ २० ॥

यह सुन नृप ने शालिभद्र को खूब सराहा ।
 और स्वयं उस धनी सेठ से मिलना चाहा ॥
 आज्ञा की थी देर, सवारी नौकर लाये ।
 राजा जी तत्काल सेठ के घर पर आये ॥ २१ ॥
 माता जी को खबर हुई, आये हैं राजा ।
 करने को आरती थाल सोने का साजा ॥
 चटपट आई स्वयं द्वारपर, की अगवानी ।
 हर्ष सहित सत्कार किया, बोलीं मृदु वानी— ॥ २२ ॥

“स्वागत राजन् ! श्री चरणों से कुटी हमारी,
 करिए आज पवित्र, अनुग्रह होगा भारी ॥”
 माता जी ने यों विनीत बहु वचन सुनाये ।
 होकर बहुत प्रसन्न नृपति तब भीतर आये ॥ २३ ॥

× × × × × ×
 तब भूप ने भीतर पहुंच देखी अतुल कारीगरों ।
 ज्यो स्वर्ग वैभव को दिखाने सुरपुरी थी अबतरी ॥
 उस स्वच्छ आंगन में उन्हे भ्रम होगया, जल है भरा ।
 तृपने अँगूठी डालकर उस भ्रान्ति को तत्क्षण हरा ॥ २४ ॥
 मालूम हुआ जल है नहीं, वैडूर्य का यह फर्श है ।
 हम भारतीयों के पुराने शिल्प का उत्कर्ष है ॥
 इस भांति नृप पहुंचे महल के खंड चौथे में वहां—
 बोलीं सिंछनी—“आप अब विश्राम कुछ करिए यहां” ॥ २५ ॥
 फिर पुत्र से कहला दिया कर यो नृपति से प्रार्थना ।
 था सातवें गृहखंड भीतर शालिभद्र महामरना ॥
 वह भोग निज ऐश्वर्य का आनन्द से था कर रहा ।
 दासी गई उसके निकट, त्यो शीघ्रता से यों कहा— ॥ २६ ॥
 “स्वामिन् ! कहा है स्वामिनी ने आप जल्दी आइए ।
 स्वागत उचित है भूप का; उनको प्रसन्न बनाइए” ॥

पर शालभद्र लगे हुए थे ऐश मे आराम में ।

थी कर रही उनका मनोरंजन स्त्रियां विश्राम में ॥ २७ ॥

कहला दिया मा से उन्होने—“आप को अधिकार है ।

जैसा समझिये, कीजिए, जो कुछ कि शिष्टाचार है” ॥ २८ ॥

X X X X X X X

माता जी ने यह सुनकर फिर भेजा अपनी दासी को ।

“पुत्र ! उचित है नृप की पूजा हरइक नगर निवासी को ॥

यह हैं नाथ तुम्हारे आये, इनका शुभ स्वागत करना ।

है कर्तव्य तुम्हारा ही, ये मेरे वचन हृदय धारना” ॥ २९ ॥

“नाथ तुम्हारे” इन शब्दों से विचलित हो, विस्मय के साथ,

शालभद्र ने सोचा—मेरा अब तक भी कोई है नाथ ?

उसी समय वह उठ कर आये, राजा का सत्कार किया ।

आदर सहित बिदा कर उनको अपने मनमे ठान लिया ॥ ३० ॥

“अब मैं ऐसा करूँ कि जिसमे मेरा कोई नाथ न हो ।”

मैं स्वतंत्र हो जाऊँ, मुझ पर कभी किसी का हाथ न हो ॥

बस उस दिन से शालभद्र ने एक एक प्यारी नारी,

नित्य त्यागना शुरू कर दिया, यो वैराग्य हुआ जारी ॥ ३१ ॥

समाचार यह धीरे धीरे उनकी बहन सुभद्रा ने

सुन पाया, उस समय चली थीं वह निज पति को नहलाने ॥

एकाएक सहोदर का वैराग्य सुभद्रा जी सुन कर

रोने लगी । देख धन्ना जी लगे पूछने यों सत्वर— ॥ ३२ ॥

“हे भद्रे प्रियतमे ! अचानक क्यों यो अश्रु बहाती हो ?

मेरे जीते कौन दु ख है, जो तुम शोक मनाती हो ?”

सब वृत्तान्त सुभद्रा ने तब शालभद्र का बतलाया ।

कहा—“सहोदर को मेरे वैराग्य अचानक हो आया ॥ ३३ ॥

एक एक कर पत्नी अपनी नित्य त्याग करते जाते” ।

धन्ना जी ने भार्या से यों कहा उपेक्षा दिखलाते ॥

“हे भद्र ! तेरा भाई साहस से खाली कायर है ।
दम भरमें सब बन्धन तोड़े, वही शूर है, वह नर है” ॥ ३४ ॥

पति की बात सुभद्राजी को बुरी लगी, तब वह बोली—
“प्राणानाथ ममता की गुत्थी कब किसने चटपट खोली ?
कहना है आसान बहुत, पर करना उतना सहल नहीं” ।

यह सुनते ही धन्ना जी को हो आया वैराग्य वही ॥ ३५ ॥
धन्ना जी ने तत्क्षण त्यागीं आठ सुभद्रादिक नारी ।
धन जन रत्न कोष घर छोड़े सुख शय्या न्यारी न्यारी ॥
शालभद्र के पास गये फिर, बोले—“प्रिय ! क्या करते हो ?
शीघ्र करो कल्याण कार्य को; ढीले क्यों हो ? डरते हो ? ॥ ३६ ॥
आत्मसिद्धि का यत्न करो बस” शालभद्र भी यह सुनकर—
“जय जिनेन्द्र जी की” यों कहकर हुए तपस्या में तत्पर ॥
सुख पर बांधी मुख पत्नी मुनि उपकरणों को ग्रहण किया ।
जैन लिंगधारी यों होकर शुद्ध बुद्ध वैराग्य लिया ॥ ३७ ॥
शेष आयु को ज्ञान ध्यान में लगा दिया; नररत्न हुए ।
आत्मसिद्ध ही के अनुगामी उनके सभी प्रयत्न हुए ॥ ३८ ॥
इति ।

— :: ० :: —

आत्माभिमान ।

कर्कश शैल-शिला को मेरे मस्तक पर गिरजाने दो ।
तरल-तरंगों को तल-तल कर छाती पर लहराने दो ॥
अशनि-पात होने दो सिर पर काल चक्र फिर जाने दो ।
छिन्न भिन्न तन हो लेने दो वस्त्र शक्र गिर जाने दो ॥
नहीं हटूंगा अड़ा रहूंगा होने दो तोषों की मार ।
आत्म विजय का अभिलाषी हूं देव-द्वार का दावादार ॥

— दास ।

अहिंसा ।

[लेखक—श्रीयुक्त अध्यापक जङ्गरबल्लभ जी, सागर ।]



हिंसा का सिद्धान्त कब से और क्यों प्रचलित हुआ ? पहिले हम इसी पर विचार करेंगे । परन्तु इसके लिये हमें शास्त्र और इतिहास के पत्रे पलटने की आवश्यकता नहीं उस पर अनुमान, युक्ति और बुद्धिबल से ही विचार किया जा सकता है । यह सिद्धान्त कब से प्रचलित हुआ, इसका ठीक ठीक उत्तर कोई दे नहीं सकता । हां, इतना निर्विवाद है कि इसे प्रचलित हुए सहस्रो वर्ष हो गये ।

कोई समय वह था, जब मनुष्य, मनुष्य तक को मार खाता था । धीरे धीरे उसके हृदय में ज्ञानालोक हुआ । सजातीयों के भक्षण से उसे घृणा हुई और वह पशु पक्षियों पर अपना जीवन निर्वाह करने लगा । परन्तु यह कार्य भी प्रकृति के विरुद्ध था । क्योंकि प्रकृति ने प्राणिमात्र के भोजन के लिये अन्न, फल, शाक पात आदि की उत्पत्ति कर दी थी । परिस्थिति ने पलटा खाया । मनुष्य को प्रकृति माता के दिये हुए भोजनो का पता लगा और वह उन्हें उपयोग में लाने लगा । परन्तु फिर भी प्राणियों का संहार किया जाता था वह उनके धी दूध से ही संतुष्ट न था । यह देख समझदार मनुष्यों से न रहा गया । उन्हें उन उपकारी पशुओं की जीवन रक्षा करना उचित जान पड़ा और अहिंसा के सिद्धान्त की सृष्टि की गई । इससे मनुष्य की स्वार्थ-परता प्रतीत होती है । परन्तु यह स्वार्थपरता अनुचित न थी—परमावश्यक थी । सच पूछो तो इस सिद्धान्त से मनुष्यमात्र को बड़ा लाभ हुआ है । यदि यह सिद्धान्त प्रकाश में न लाया जाता तो

सदेह है कि हमें लाभ पहुंचाने वाले प्राणी आज संसार में दृष्टिगत होते या नहीं !

धीरे धीरे यह सिद्धान्त ‘अहिंसा परमो धर्माः’ के रूप में आगया है। तो क्या ‘अहिंसा’ सर्वथा उचित है ? क्या हिंसा बिल्कुल भी न होनी चाहिये ? हमारी राय में तो यह बात परिस्थिति पर ही निर्भर है। यदि परिस्थिति हिंसा के अनुकूल है तो हिंसा करना भी परम कर्त्तव्य एवं धर्म समझा जायगा। मनुष्य धार्मिक होने के साथ ही साथ राजनैतिक भी है। ‘राजनीति’ शब्द सुन कर चाहे वह भले ही डरे पर संसार में रहना ही राजनीति है। यदि हमारे राष्ट्र पर कोई विदेशी शत्रु चढ़ आवे—और यदि हम सच्चे देश-भक्त हैं—तो धर्म और राजनीति के लिहाज से हमें अवश्य ही उसका प्रतिकार करना पड़ेगा। प्रतिकार में युद्ध होगा और युद्ध करना क्या हिंसा नहीं है ? इस हिंसा को कौन अनुचित कहेगा ? जो मनुष्य हत्यारा है, चोरी करता है या दूसरे निर्दोष लोगों को सताता है राजनीति उसे अपराधानुकूल दण्ड देने को बाध्य है। संसार का कोई भी मजहब उसका विरोध नहीं करता क्योंकि ऐसा होना न्याय एवं धर्म समझा जाता है। परन्तु क्या यह हिंसा नहीं है ? वह आवश्यक है उससे अहिंसा की रक्षा होती है। इसी प्रकार हिंसक पशुओं की हत्या पर भी कोई शोक प्रकाश तक नहीं^१ करता, रोकने की तो बात ही न्यायी है। यह क्यों ? उचित है !

परन्तु जब हम अनुचित हिंसा देखते हैं तो हमारे मन में क्रोध उत्पन्न होता है। हम उसका प्रतिकार करना चाहते हैं। फिर चाहे वह हिंसा किसी प्राणी की हो चाहे धर्म, सत्य, आचार विचार, एवं धन सम्पत्ति की। रोलट एक्ट का विरोध भारत ने इसी ‘अहिंसा’

१ यहाँ हम लेखक महाशय के धर्म शब्द की व्याख्या से सहमत नहीं हैं। (स)

२ जैन धर्म करता है (सं)

की रक्षा के लिये किया था । क्योंकि उक्त एकट सत्य एवं न्याय की हत्या करता है । सत्य एवं न्याय की हत्या धर्म की हत्या है । और धर्म की हत्या सबसे बड़ी हत्या है । अतएव इस हिंसा को रोकने के लिये भारत माता के सैकड़ों सुपुत्रों ने अपने प्राण निष्ठावरकर दिये । यद्यपि उन्हें सफलता प्राप्त नहीं हुई, परन्तु उन्होंने अपना कर्त्तव्य पालन किया । और हम लोगों को कर्मवीर बनने एवं देश सेवा करने का पाठ पढ़ाया । क्या अब उक्त एकट का दमन करना आवश्यक नहीं है ? गोबध बन्द कराने के लिये आप “अहिंसा परमो धर्मा.” की पुकार क्यों कर रहे हैं ? इसीलिये कि एक तो गोबध से धर्म का, देश का और दूसरे मनुष्य जीवन के उच्च पदार्थ ‘कृतज्ञता’ का नाश होता है । गौ एक ऐसा प्राणी है जिससे हमारे प्यारे भारत का जीवन निर्भर है । जो प्राणी इतना उपकारी है, उसकी सेवा करना तो हमारा परम धर्म है । दूसरे के उपकार को न भूलना ही कृतज्ञता है—मनुष्यता है यदि हम गौ माता के उपकारों को भूल उसके वध पर दुःखित न होते तो इससे बढ़ कर कृतघ्नता और क्या होती ? सरकार भी मनुष्यों से ही बना है । उस पर भी गऊ के अनन्त उपकार हैं । पर शायद सरकार ‘कृतज्ञता’ शब्द से अपरिचित है । यदि अब भी वह न चेती यदि अब भी उसने कृतज्ञता को न अपनाया तो उससे बढ़ कर मूर्ख और कोई न होगा ।

संसार के प्रत्येक मुख्य धर्म और मजहब में अहिंसा पर जोर दिया गया है । प्रत्येक धर्म और मजहब ‘अहिंसा परमो धर्माः’ का जोरों से समर्थन करता है । धार्मिक पुस्तकों में स्थान स्थान पर इस समर्थन के उदाहरण पाये जाते हैं । और ये उदाहरण इतनी अधिकता से पाये जाते हैं कि जिसका वर्णन करना कठिन है । सनातन धर्म में आप अहिंसा परमो धर्माः की लहर बड़े जोरों से बहती हुई पायेगे । भगवान् राम और कृष्ण के चरित्र में हम इस तत्व को बड़े ही व्यापक रूप में पाते हैं । सच तो यो है कि इसी तत्व रक्षा करने के लिये ही उनका जन्म हुआ था । कंस और रावण का नाश इसीलिये किया

गया कि वे अहिंसा को ताक पर रख प्रचंड रूप से हिंसा का प्रचार कर रहे थे । वे आचार-विचार, नीति-धर्म गऊ-ब्राह्मण सभी की हिंसा कर रहे थे । स्वार्थ के बशीभूत हो, उचित अनुचित का ध्यान छोड़ निर्दोषियों को सताने में उन दुष्टों ने कोई कसर नहीं की थी । इसीलिये उनका दमन करने की अतीव आवश्यकता हुई । क्योंकि वैसा करने में धर्म, नीति, न्याय आचार विचार गऊ ब्रह्मण, निर्दोषी एवं निरपराधी ओर अहिंसा की रक्षा होती थी ।

इस्लाम धर्म भी इस तत्त्व से खाली नहीं है । मुहम्मद साहिब ने कहीं भी किसी को सताने की आज्ञा नहीं दी । प्रत्युत उन्होंने संसार की भलाई तथा दूसरों से प्रेमप्रिय वर्तने का ही आदेश किया है । किंवदन्ती है कि पैगम्बर साहिब को एक बार चालीस दिन का फाका करना पड़ा । अंतिम दिन अनुयायियों एवं भक्तों के प्रमाणद के कारण उन्होंने मांस की एक बोटी स्वीकार की । परंतु बोटी मुंह से लगाते ही उन्हें उस निरपराध पशु के अकारण हतन होने का बड़ा पश्चात्ताप हुआ । उनके हृदय में दया की लहर दौड़ गई, तुरंत ही बोटी को मुंह से हटा दिया । कहने का मतलब यह है कि यहां भी दया का बखूबी दौर दौरा है । परंतु अफसोस, जिस धर्म में इतनी दया है, उसी के अनुयायी, धर्मान्धता के कारण कहिये अथवा स्वार्थ एवं मूर्खता के कारण गोवध ऐसा नृशंस एवं पाप पूर्ण कार्य कर पाक इस्लाम को बदनाम कर रहे हैं । धिक्कार है इस मूर्खता एवं नीचता पर । ऐ माननीय मुसलमान नेताओ ! तुम कहाँ सो रहे हो ! देखो तुम्हारा पाक इस्लाम बदनाम हो रहा है । आओ ! अपने प्यारे इस्लाम को इस बदनामी से उबार लो । गोवध कतई बन्द करा दो । कुरबानी

में भी उसकी आवश्यकता नहीं। खुदा ने वक़रे भी इस दिनके लिये न बनाये थे ।

हजरत ईसा फ़र्माते हैं—“यदि तुम्हें कोई एक चपत मारे तो तू उसके सामने दूसरा गाल भी कर दे ।” अहा! इस दयाका भी कुछ ठिकाना है । हाय ! आज उन्हीं ईसा की उम्मत ने दयालुता के इस सिद्धान्त को ग़ुह्र का प्याला पिला दिया है ।

*
.....

हजरत ईसा ! क्या इसी दिन के लिये तुमने इन्हें अपना शिष्य बनाया था ? क्या तुम इनके यह पड़्यन्त्र नहीं देख रहे हो ? आओ इस समय संसार को तुम्हारी वही आवश्यकता है । अपने इन शिष्यों को सुगार दो । संसार को मिट्टी में न मिलने दो !

भगवान् बुद्ध की अतुलनीय दया के गुण कौन गा सकता है । अहिंसा की रक्षा के लिये ही उनका जन्म हुआ था । आज उन्हीं के अनुयायी कुत्ते, बिल्ली और मेढ़क तक नहीं बचने देते तो इसमें भगवान् बुद्ध का क्या दोष है ?

लाला कजोमल एम० ए० अप्रैल १९१६ की ‘सरस्वती’ के ‘जैनतत्त्व मीमांसा’ शीर्षक लेख में एक जगह लिखते हैं—“बौद्ध मत में तो “अहिंसा परमो धर्मा” कहने ही भरको है; जैन धर्म का तो वही मूलधार है । जैन धर्मावलम्बियों का वर्ताव भी उसके अनुसार ही है ।” मेरी बुद्धि में लाला जी को बौद्ध धर्म पर इस प्रकार अशिष्ट आक्रमण करना शोभा नहीं देता । यदि सच पूछिये तो अन्य धर्म वालों के समान जैनी लोगों की हालत भी हो रही है । इसमें सन्देह नहीं कि “अहिंसा परमोधर्मा” जैन धर्म का मूलधार है और इसके

* खेद है कि प्रेम जैनजर में लेखक के कुछ शब्द छापने नहीं स्वीकार किये (मं०)

लिगे उसकी जितनी प्रशंसा की जाय धोड़ी है । पर, माफ कीजिये यह सिद्धान्त सिर्फ शास्त्रों में ही है समाज में नहीं । वास्तव में जैन भाई—सब नहीं—इस सिद्धान्त की परवा ही नहीं करते । पानी छान कर पी लेने से ही अहिंसा की रक्षा नहीं हो जाती । वास्तवमें ये लोग 'अहिंसा' की टट्टी की ओट शिकार खेला करते हैं । भीतर ही भीतर भीखरी छुरी चलाने में ये लोग बड़े प्रवीण होगये हैं । जो लोग इनके लेन देन में फँस जाते हैं वे ही इनके सताने से वाकिफ हो सकते हैं । व्यापार हाथ में रहने से एक तो दिन रात झूठ पर कमर कसे रहना और दूसरे जनता को लूटना इनका मुख्य काम है । क्या दूसरों को सताना हिंसक कार्य नहीं है ? मैं एक ऐसे जैनी को जानता हूँ जो गो-बध करने वाले कसाइयों को उनके रोजगार के लिये अच्छे व्याज पर रुपया देता था । कहने पर व्यापार, रोजगार और अपने बनियापन की दुहाई देता था । खेद तो इस बात का है कि समाज भी उससे कुछ न कहती थी । * चुपचाप वेइया के यहां जाना तथा व्याह आदि में बुलाना तो इनके मनोरंजन की सामग्री है । चाहे उसमें समय, आचार विचार, नीति और सम्पत्ति का दुरुपयोग भले ही हो । कन्याविक्रय, पृद्ध विवाह, अनमेल विवाहमें भी ये लोग आगे कदम मार रहे हैं दिन रात जातीय पत्र इस ओर आन्दोलन करते रहते हैं । पर इस ओर इन सरीफों का ध्यान क्यों जाने लगा ! अपनी सन्तान का विक्रय करना, उसके जीवन को नष्ट करना पुण्य कार्य है न ? फिर उसको बन्द करने की आवश्यकता ? आन्दोलनकारी रुपये थोड़े ही गिने देते हैं ।

“अहिंसा परमोधर्माः” का सिद्धान्त बहुत ही व्यापक है । उसका यही अर्थ नहीं कि 'अहिंसा परमधर्म' है और न छानकर पानी पीने से ही उसका पालन हो सकेगा । सत्-प्रवृत्तियों का नाश, विद्या से शत्रुता, सामाजिक कुरीतियों, आचार विचार नीति आदि का

*अब गो रक्षा का प्रबल आन्दोलन उठने और चारों ओर से दबाव पड़ने के कारण इसने अपने कार्य से हाथ खींच लिया है ।—लेखक ।

स्रयाल छोड़ कुवृत्तियों की ओर झुकना, स्वार्थ के लिये जनता और जनता के रूप में देश को सताना, समय तथा द्रव्य का दुरुपयोग आदि कर्म हिंसक ही हैं। इन सब से बचने पर भी 'अहिंसा' का पूर्णतया पालन नहीं हो सकता। "अहिंसा परमोधर्माः" का दूसरा और सीधा अर्थ—जिसके लिये यह सिद्धान्त दिन प्रतिदिन व्यापकता धारण कर रहा है यही है कि हिंसा से बचते हुए 'अहिंसा' का पालन करो अर्थात् परोपकार और सुधार में दत्त चिन्त रहना ही सच्चा अहिंसा धर्म है।

कई वर्ष पहिले 'सरस्वती' में "सोने की थाली" शीर्षक, कविता निकली थी। उसमें योग्य लेखक पं० कामताप्रसाद जी गुरु ने अहिंसा पालन करने का एक बिल्कुल सीधा-साधा मार्ग बतलाया था। हम यहां उक्त कविता का सारांश देते हैं। किसी समय काशी के एक मंदिर में स्वर्ग से सोने की एक थाली आकर गिरी। उसमें यह लेख खुदा था कि यह पात्र उस मनुष्य को मिलेगा जो सबसे धर्मात्मा होगा। यह समाचार सुन बहुत से लोग उस पात्र को प्राप्त करने आये पर वह किसीके हाथ में सोने का न रहा। बहुतरे धनियोंने अपना सारा धन पुण्य कर दिया पर व्यर्थ। बहुतसे साधू लोग भी, जिन्होंने ईश्वर के लिये संसार त्याग दिया था, उस पात्र को प्राप्त करने आये। उन्होंने बड़े जोर से चिल्लाकर ईश्वर प्रार्थना की पर पास ही खड़े दीन दुखियों की ओर एक नज़र भी न डाली। उनका यह उद्योग भी निरर्थक हुआ।

थोड़े दिन बाद वहाँ एक दीन किसान आया। उसने भगवान् से प्रार्थना की कि मेरे साथ मेरे गांव तथा देश के दीन दुखी भी सुख पावें। भगवत्प्रार्थना कर चुकने पर वह आंगन में आया। वहाँ उसकी दृष्टि एक ऐसे आदमी पर पड़ी जो देह के घावों की पीड़ा से बड़ा दुखी हो रहा था किसान ने देर तक उसकी सेवा की तथा उसके साथ बड़ी सहानुभूति दिखलाई।

पुजारी ने किसान का यह सत्कर्म देख उससे भी उक्त पात्र की परीक्षा करानी चाही किसान ने कहा, मैं इस पात्र के सर्वथा अयोग्य हूँ । परन्तु लोगो के बहुत आग्रह से ज्योही उसने वह पात्र उठाया त्यों ही उसमे चौगुनी चमक आ गई । अहिंसा पालन का यह सर्वोत्तम उपाय है ।

अहिंसा पालन के लिये अपने शरीर की रक्षा करना बड़ा आवश्यक है । शरीर पर ही सारे धर्म निर्भर हैं । इमलिये सदाचार से रहने की बड़ी आवश्यकता है । अपनी कुप्रवृत्तियों का नाश करना तथा सद्गुणों को ऊँचा करना चाहिये । जिससे मन की शुद्धि हो और हम परोपकार की ओर झुक सकें । विषय वासना, भोग विलास आदि कुप्रवृत्तियों के विषयी फल आज हमारी आँखों के साम्हने नाच रहे हैं । स्त्री पुरुषों का निर्बल होना, संतान का कमजोर होना एवं अकाल मृत्यु हो जाना आदि सब हमारी कुप्रवृत्तियों का ही कारण है । इन्हीं कुप्रवृत्तियों ने हमें निर्बुद्ध, निस्तेज, उत्साह हीन और देश शत्रु बना दिया है । अतः इनका नाश करना ही हमारा परम धर्म है ।

परन्तु इसी से ही अहिंसा और हमारे शरीर की रक्षा न हो सकेगी । शरीररक्षा के लिये दूध, दही और अन्न की बड़ी आवश्यकता है और इन्हीं का हमारे देश में पूर्णतया अभाव हो रहा है । कहना न होगा कि हमारे करोड़ों भारतवासी पेट की ज्वाला से छटपटा रहे हैं और लाखों धर्मच्युत होते जा रहे हैं । इसका एक बड़ा कारण गौ बध भी है । जब तक यह बंद न होगा तब तक न तो हमारी शरीर रक्षा ही हो सकती है और न हम अहिंसा के प्रेमी ही बन सकते हैं । सरकार ने तो आपकी इच्छा के ही प्रतिकूल चलने की ठान ली है और वह इसे बंद नहीं किया चाहती । अतः इसका सब से सरल उपाय यही होगा कि जाति जाति की पचायनें अपने समाज से गौ विक्रय ही बंद करा दें या गौ रक्षा के लिये वे जो उपाय उचित समझें, कार्य

रूप में परिणत कर सकते हैं । क्या अहिंसा का डंका पीटने वाले हिन्दू और मुसलमान इस ओर न झुकेंगे ?

प्रत्येक जाति में विद्या की कमी है । हमारा काम है कि हम उन्हें विद्या की ओर ले जावें । जिससे उनमें सद्बृत्तियों का प्रकाश हो । समाज अलग ही अवनति के अंधकूप में पड़ी है । स्त्रियों पर जो अत्याचार हो रहे हैं वे अनर्णनीय हैं । हम लोग उन्नति की ओर अग्रसर हुए जा रहे हैं और घर की विलखती हुई लक्ष्मियों की ओर दृक्पात भी नहीं करते । शिक्षा का तो उन्हें नाम भी नहीं बताया जाता । देश का इतना बड़ा अंग सताया जा रहा है और आप 'अहिंसा' की रक्षा चाहते हैं । भाई सचमुच आप गजब के जीव हैं । अनमेल विवाह, दहेज प्रथा, कन्या विक्रय और इन सब का परिणाम ध्येयभित्ति हमारे समाज को कलङ्कित कर रहे हैं । इन्हें रोकना क्या हमारा कर्तव्य नहीं है ? क्या एक वृद्ध खूंस्ट के साथ जबरन गऊ समान कन्या को बेच देना अत्याचार नहीं है ? क्या इस प्रकार एक कन्या के जीवन को नष्ट कर डालना हिंसक कार्य नहीं है ? क्या जबरदस्ती दहेज की रकम वसूल करना एक गरीब को कर्जदार बना कर सताना हिंसक कर्म नहीं है ? यदि है तो हमारा सर्व प्रथम कर्तव्य इन कुप्रथाओं को नाश करना है ।

जुआ खेलना, शराब पीना, वेश्या प्रेम आदि हिंसक कर्म ही हैं । इनसे भी तो समय, सदाचार, सत्पति आदि का नाश होता है । यदि आप सब अहिंसक बनना चाहते हैं तो आज से ही इन दुर्गुणों के नाश करने की प्रतिज्ञा कीजिये ।

सब देश भक्त बनिये । देश की आवश्यकताओं को समझिये । जहाँ देखिये कार्य क्षेत्र साम्हने है । समाज, राजनीति एवं धर्म आदि किसी भी स्थान में आप देश सेवा कर सकते हैं । उपर जो थोड़ी सी बातें लिख आये हैं उन्हीं के द्वारा आप कुछ देश सेवा कर सकते हैं । जिस देश पर आपका जीवन भरण निर्भर है, जिन बातों से देश

का हित हो उन्हीं पर चलना सबे अहिंसा धर्म का पालन है । अत-
एव कर्मवीरो उठो तुम्हारे ऊपर ही भारत माता का भविष्य निर्भर
है । उसकी सेवा के लिये तैयार हो जाओ । एवमस्तु ।

नोट:—ऊपर जो बातें कही गई हैं वे किसी धर्म के द्रंष से नहीं कही
गई । हमने तो लेखक के नाते से सभी समालोचना करनेका प्रयत्न
किया है । अतएव इसमें किसी को बुरा न मानना चाहिये । (ले०)

❀ पञ्चानन—पञ्चक । ❀

(लेखक—श्रीमज्जीनधर्मोपदेश माधव मुनि जी महाराज ।)

यद्यपि त्रिशिष्ट बलिष्ठ तू मृग-राज ! अति निर्भीक है,
झल-बल कला की कुशलता मे भी बड़ा सश्रीक है ।
देखा गया सब चाल-ढालों में परम रमणीक है—
पर कर दिया पड़ पीछरे में निज प्रभुत्व व्यलीक है ॥१॥
स्वातंत्र्यता का हा: ! तुझे अब सुख न सौ सौ कोस है,
किसने भला पाया बता-परतन्त्रता में तोष है ?
पञ्चास्य से अब एक ही तू आय वाला रह गया,
चतुराननों से क्या भला-कुछ काम कर सकता नया ? ॥२॥
एकास्य से बस खा सके वा गर्जना कुछ कर सके—
हस्तादिकों से क्या कभी तू एक डग भी भर सके ?
षड्विंशति तुझे लख शूर भी मन बीच संशय धारते,
अब बाल भी निर्भीक होके हा: ! तुझे धुतकारते ॥३॥
गिरि राज से गज राज तब तुझ गंध से चिह्नारते,
अजराज अब पिछर निटक हा: ! आय टक्कर मारते ।
शत पंच गज का बल मिला तेने किया निष्काम है,
सच पूछिये तो हा: ! किया निज नाम ही बद-नाम है ॥४॥
अब भी सु अवसर पा मृगाधिप ! पीछरे को छोड़ दे,
आज्ञाद हो वन मे विचर हठ-बन्धनों को तोड़ दे ।
अपने प्रसिद्ध प्रभाव का परिचय दिखा दे सर्व को,
तज के विभाव स्वभाव मे रम, दे तिलाञ्जलि गर्व को ॥५॥

जैन-पथ-प्रदर्शक



स्वर्गवासी शास्त्रज्ञ सेठ बालमुकुंदजी के
सुपुत्र
सेठ मोतीलालजी सतारा (दक्षिण)

जैन-पथ-प्रदर्शक



श्रीस्वामी विरूपाक्ष वडियर, एम. ए.
प्रौफ़ेसर संस्कृत कालेज, इन्दोर स्टेट

* जैन-धर्म-मीमांसा । *

(लेखक-भंयुत विरुपाक्ष वहियार, प्रोफेसर संस्कृत कालेज ।)



खिल शक्तिचालक जगन्नियन्ता ने अपने भव्यसामर्थ्य द्वारा इस जगत एवं सब प्राणियों को निर्माण किया है। उन सब प्राणियों में मनुष्य की गणना श्रेष्ठ प्रति में की गई है, और अपने निर्माणकर्ता को जानने तथा उसकी ओर दृष्टिपात करने की शक्ति उसने केवल इसी मानव प्राणी को दी है। अन्य जीवों में वह नहीं है। मनुष्य योनि में जन्म लेकर संसार में विद्या, शौर्य, कीर्ति,

परोपकार आदि अनेक बातें साधनी पड़ती हैं, और उन्हीं से मनुष्य जीवन की सार्थकता होती है। किंतु सब की अपेक्षा उस उत्पत्तिकर्ता ब्रह्मांडन्यायी परमेश्वर को जानना विशेष आवश्यक है, इस बात से कोई इनकार नहीं कर सकता। स्वतन्त्र शक्तिमान और अधिकार युक्त होने के कारण ही मनुष्य प्राणी ने अपने ईश्वरनिर्मित बल के द्वारा अन्य सब जीवों पर वर्चस्व जमाकर उन्हें पूर्ण प्रकार से आधीन कर लिया है। यद्यपि वैशेषिक शास्त्रज्ञों के मतानुसार आत्मा संसार भर में फैला हुआ है, और वह अनन्त उपाधि साधनों से सर्वत्र सुख दुःख भोगता है। यही नहीं बरन् विज्ञानाचार्य जगदीशचन्द्रबसु जैसे अद्वितीय शास्त्रज्ञ भी सार्वत्रिक आत्मवास को प्रत्यक्ष सिद्ध करके दिखला रहे हैं, किम्बहुना वृत्तादिकों में भी मनुष्य देह के समान आत्मस्थिति होने और उसके वृत्तोपाधि रूप में सर्वदा सुख दुःख भोगते रहने की दशा भी जब स्पष्ट रूप में दिखाई जा सकती है, तब आत्मनाम्नित्व को कौन सिद्ध कर सकता है ?

सृष्टि के आरंभ से आज तक इस मानव प्राणी के लिये अनेक प्रकार से नियमन किया गया है, और उनमें वेद मुख्य हैं, इस बात को पाश्चात्य विद्वानों ने भी मुक्त कण्ठ से स्वीकार किया है। यही नहीं वरन् वे खुद इसका प्रतिपादन भी कर रहे हैं। ऐतिहासिक ग्रन्थों से जाना जाता है कि उस अखंड ज्ञान भंडार रूढ़ि वेद राशि का कुछ भाग नष्ट कर दिया गया है। किन्तु हर्ष का विषय है कि उस काल घटना की घोरतर दुरावस्था से बचकर भी आज उसका बहुत बड़ा भाग पूर्व परम्परा से वर्तमान है। आज तक भारत में नानाविध धर्मों का अस्तित्व हुआ; और उन में से कईयों का लोप भी होगया है। किन्तु हम जिस जैन-धर्म को यहां वेदादि ग्रन्थों द्वारा सिद्ध कर दिखाना चाहते हैं, वह प्राचीन काल से अब तक पूर्वरूप में ही वर्तमान है। जो लोग इसे अवैदिक कह कर तिरस्करणीय समझते हैं, उन्हीं को हम आज जैन-धर्म के वेदोक्त होने एवं वेदकाल में उसका अस्तित्व होने का विश्वास करावेगे।

जैन धर्म के विषय में कुछ पाश्चात्य एवं पौराण्य लोगों का यह मत है कि, यह धर्म बौद्ध धर्म से निकली हुई चार शाखाओं में से ही एक है। और कईयों के मतानुसार यह बुद्ध से पहले का और भारत का एक अग्रान्तरभेद है। केवल यज्ञ यागादि एवं देव पूजनादिकर्मों से विहित रहने के कारण ही यह नास्तिक बतलाया गया है। अर्थात् इसे सर्वथा निरीश्वरवादी ही कहा गया है। कुछ लोग इसे बौद्धिक एवं अवैदिक ग्रन्थों पर से समग्र किये हुए तत्वों के मिश्रण से निर्माण किया हुआ समझते हैं। यद्यपि वे अपनी बुद्धि के अनुसार विचार प्रगट कर रहे हैं, किन्तु उसमें विशेष ध्यान देने की बात यह है कि इस परस्परके विवाद अथवा निन्दित वाक्यों के उच्चारण से देशोन्नति को कितना बड़ा धक्का पहुंचा है। और इस प्रकार एक धर्म के दूसरे पर दोबारोपण करके देश को क्षुब्ध बनाने से, दो की लड़ाई में तीसरे के लाभ वाली उक्ति के अनुसार, भारतवासियों ने-वैदिक लोगों ने-ही परस्पर लड़ भगड़ कर (जो पहले एक मत थे, उन्हीं ने) अपने

घरमें सात करोड़ मुसलमान औरतीन करोड़ ईसाईयों को ला बिठाया है । तब क्या, पर धर्म-प्रवेश वैदिक मत के लिये विघातक नहीं हुआ ? प्यारे वैदिक भाइयो ! यदि तुम मे पर राष्ट्रीयो को वैदिक बनाने की शक्ति न हो, तो कम से कम स्वदेशी भाइयो को ही सम्हाले रखने का काम भी तुम से नहीं बन पड़ता ? व्यर्थ ही परस्पर वादविवाद कर द्वेष बढ़ाने से लाभ ही क्या है ! वेद की तरह उदात्त विचारशाली बनो ! क्योंकि आज तक जिन २ राष्ट्रो ने उन्नति शिखर पर पहुँचकर साम्राज्य सुख का अनुभव किया है, और काल-गति से जो देश दुःखानुभव करके अधोगति को प्राप्त हुए हैं, वे सब धर्म अर्थात् नीति और अनीति के प्रपंच से ही उस स्थिति को प्राप्त हुए हैं फलतः आर्य ग्रन्थों के अवलोकन करने पर धर्म की व्याख्या इस स्वरूप में मिलती है:—

यद्यद्विहितं कर्म तदेव धर्मशब्देनोच्यते ।

जो कुछ विहित कर्म है, उसी की धर्म संज्ञा है ।

अर्थान् मनुष्य को जिन २ कृतियों से शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक और राष्ट्रीय सुख प्राप्त हो वही धर्म है । निम्न लिखित श्लोक भी इसी बात की पुष्टि करता है:—

समता तप संतोषौ यमचारित्र्यमार्जवम् ।

क्षमा धृतिश्च श्रद्धा च अहिंसा सत्य मेव च,

इत्येवं दशविधं कर्म मुनिभिः परिकीर्तितम्,

सर्वत्र सम भावना, तपश्चर्या, सन्तोष, इन्द्रियनिग्रह, सचरित्र, क्षमा, धैर्य, भक्ति, अहिंसा, और सत्य भाषण, इन दश कर्मों को मुनियों ने धर्म कहा है ।

इन दशविधियों में ही लौकिक व्यवहारों का समावेश करके उसी को मनु भगवान् ने भी धर्म कहा है:—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।

धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥

धैर्य, क्षमा आत्मसंयमन, चोरी न करना, क्रोध न करना, आदि दश लक्षणों को मनुस्मृति में धर्म बतलाया है ।

इन प्रमाणों पर से जान पड़ता है कि धर्म और कर्म एक शब्दवाची ही है, और इसीलिये --

धारणाद्धर्ममित्याहु धर्मो धारयते प्रजाः ।

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः ॥

जो नित्य आचरण किया जाता है, उसी को धर्म कहते हैं । क्योंकि धर्म ही प्रजा का धारक है । जो धर्म की अवहेलना करता है उसका धर्म नाश करता है और उसकी रक्षा करने वाले को धर्म भी बचा लेता है ।

इन बातों पर से जाना जाता है कि कर्मानुगति-फल होने के कारण; अथवा स्वयं एवं दूसरों के लिये अहितकारक और सब प्रकार विघातक कर्म को कोई भी ऋषि अथवा महात्मा लोग ही नहीं, बरन् साधारण मनुष्य भी धर्म नहीं कह सकता । इसीलिये बड़े २ पंथों की स्थापना करने वाले और अजरामर ख्याति पाने वाले महा-पुरुषों की व्यर्थ आलोचना करना कभी उचित नहीं कहा जा सकता ।

धर्म सदा परिवर्तनशील होने से तत्कालीन आचार्यों ने यदि देशकाल स्थिति के अनुसार उसमें कुछ फेरफार किया हो, तो वह अन्याय नहीं कहा जा सकता । क्योंकि—

देशकालवयोऽवस्था बुद्धिशक्त्यनुरूपतः ।

धर्मोपदेश भैषज्यं वक्तव्यं धर्म पारगैः ॥

देश, काल, परिस्थिति, अवस्था बुद्धि और शक्तिको देखकर ही धर्मज्ञों को उपदेश देने की अनुमति दी गई है । जिस भांति वैद्य रोगी को परीक्षा करके औषधि देता है, उसी प्रकार की आज्ञा धर्मोपदेशकों के लिये भी बतलाई गई है । यदि उस समय ऐसा न किया जाता, तो उन्हें बहुत कष्ट उठाने पड़ते । इसीलिये धर्म को सुझा-

दायक मान कर महात्माओं ने उसके मार्ग बतला दिये हैं, किन्तु दुःख मार्ग की ओर जाने का उपदेश उन्होंने कभी किसी को नहीं दिया ! किसी धर्म या पन्थ को अन्याय्य अवथा अधर्म विशिष्ट मानने की धृष्टता सहसा कोई नहीं कर सकता । क्योंकि उन महात्माओं को अधर्म मार्ग का उपदेश देकर जनता को दुःखमग्न बनाने में लाभ ही क्या मिलता ? उन्होंने निःस्वार्थ भाव से धर्मोपदेश किया है । यदि कोई पुरुष (जो उनका शिष्य हो) उनके धर्म की निन्दा करे, अथवा धर्म की आड़ में दुराचार में प्रवृत्त हो तौ, उसका दोषारोपण उस धर्म या उसके प्रवर्तक पर करना अज्ञाता का चिन्ह है । संसार में ऐसे अनेक उदाहरण मिल सकते हैं कि, किसी एक व्यक्ति के दोषी होने पर लोग तत्काल उस महान धर्म की निन्दा करने लग जाते हैं ।

यदि किसी संस्कृतज्ञ को जैन अथवा मुहम्मदी धर्म के अनुयायी ने त्रास दिया तो वह तत्काल यह श्लोक बोल उठेगा कि—

हस्तिना ताड्यमानोऽपि न गच्छेज्जैन मंदिरम् ।

मा वदेद्यावनी भाषां प्राणैः कंठगतैरपि ॥

अर्थात्—यदि हाथी भी मारडालने को ऊपर आरहा हो तो भी जैन मन्दिर में (बचने के लिये) न घुसो । इसी प्रकार यदि प्राण कण्ठगत हो जायँ तो भी यवन भाषा का उच्चारण न करो ।

यद्यपि इस श्लोक द्वारा उन महापुरुषों ने अपने धर्म को प्रबल बनाने और अपने अनुयाइयों को परावलम्बी न बनने देने के उद्देश्य से ऐसी कठोर आज्ञाएँ दी हैं, किन्तु फिर भी शास्त्रीय दृष्टि से वह अन्याय ही कहा जायगा । क्योंकि—

“ प्रियं च नानृतं ब्रूयात् न ब्रूयात्सत्यमप्रियम् । ”

असत्य रूप में प्रिय वाक्य हो तो भी उसे उच्चारण न करो, इसी प्रकार कठोर सत्य वाक्य भी कभी मुंह से न निकालो ।

यदि हम निष्पक्षपात होकर अनुयाइयों को धर्मोपदेश करते रहें, तो कोई भी व्यक्ति हमारे धर्म को न छोड़ेगा ! किन्तु जब किसी

को परधर्मावलम्बी बनने की इच्छा ही हो गई, तो उसके लिये देवालय अथवा व्यवहारोपयोगी निर्मित भाषा कर ही क्या सकते हैं ? क्या उस भाषा में न बोलने देना व्यवहार विवातक नहीं है ? तब इस प्रकार के पोपट पंखी श्लोक निर्माण करने से लाभ ही क्या ? कहना नहीं होगा कि, इन्हीं संकीर्ण विचारों ने देश को इस दशा में पहुंचा दिया है ।

अब हम अपने मुख्य विषय पर कुछ लिखेंगे । सब से प्रथम हमें “जैन” शब्द का यथार्थ उत्पत्ति पर विचार करना होगा ।

“स्याद्वादमंजरी” नामक ग्रन्थ में “रागादि जेत्वाज्जित” के रूप में जो प्रतिपादन किया गया है, और “आप्तनिश्चयालङ्कार” नामक ग्रन्थ में:—

सर्वज्ञो जितरागादि दोषस्त्रैलोक्य पूजितः ।

यथास्थितार्थवादी च देवोऽर्हन् परमेश्वरः ॥

बल भोगोपभोगानामुभयोर्दानलाभयोः ।

अन्तरायस्तथा निद्रा भीरुज्ञानं जुगुप्सितं ॥

हिंसा रत्यरती रागद्वेषौ रतिरति स्मरः ।

शोको मिथ्यात्व मतेऽष्टादश दोषा यतः स्मृतः ॥

जिनो देवो गुरुः सम्यक् तत्त्वज्ञानोपदेशकः ।

सर्वज्ञ, राग दोषादि को जीत लेनेवाला, त्रिलोक-बंध और यथास्थित रूप से कहनेवाला अर्हन् देव साक्षात् परमेश्वर है । बल, भोग और उपभोग का एवं दोनों दान लाभ का विघ्न, और निद्रा, भीति, अज्ञान, निद्रा, हिंसा, रति, अरति, राग, द्वेष, कामादि-विकार, शोक, और मिथ्यात्व ये अठारह दोष यतियों के लिये माने हैं । जिन देव उत्तम ज्ञानोपदेश करनेवाला गुरु है ।

इत्यादि प्रमाणों से जिन या जैन का भावार्थ राग, द्वेष, मोहादि दोषों को जीत लेनेवाला, और जो अजरामर अर्थात् मृत्युंजवरूपी परमेश्वर है, उसका अर्थ अर्हन् से समझ जाकर जैन धर्म की प्रकृति

कथित की गई है । जिस प्रकार ईश्वरीय प्रेरणा से अग्नि, वायु, आदित्य, आंगिरस, इन चार ऋषि देवताओं द्वारा वेदोंके प्रादुर्भूत होने का सिद्धान्त हम मानते हैं, उसी प्रकार “अर्हन्” रूपी ईश्वरीय प्रेरणा से ऋषभादि चौबीस तीर्थकरो द्वारा जैनधर्म के प्रादुर्भूत होने के सिद्धान्त पर जैनियों का विश्वास है ।

वे २४ तीर्थकर ये हैं:—

१ ऋषभदेव	९ सुविधिनाथ	१७ कुंथुनाथ
२ अजितनाथ	१० शीतलनाथ	१८ अरनाथ
३ संभवनाथ	११ वासपूज्य	१९ मुनिसुव्रत
४ अभिनन्दन	१२ श्रेयांसनाथ	१९ मल्लिनाथ
५ सुमतिनाथ	१३ विमलनाथ	२१ नमिनाथ
६ पद्मप्रभु	१४ अनन्तनाथ	२२ नेमिनाथ
७ सुपादर्वनाथ	१५ धर्मनाथ	२३ पादर्वनाथ
८ चन्द्रप्रभु	१६ शांतिनाथ	२४ महावीर(वर्धमान)

ईर्ष्या-द्वेष के कारण धर्म प्रचार को रोकनेवाली विपत्ति के रहते हुए जैन शासन कभी पराजित न होकर सर्वत्र विजयी ही होता रहा है । इस प्रकार जिस का वर्णन है, वह ‘अर्हन् देव’ साक्षात् परमेश्वर (विष्णु) स्वरूप है, इस के प्रमाण भी आर्ष ग्रन्थों में पाये जाते हैं ।

उपरोक्त अर्हन् परमेश्वर का वर्णन वेदों में भी पाया गया है ।

अर्हन् विभर्षि सायकानि धन्व अहानिक्वजतं विश्वरूपं ।

अर्हन् इदं दयसे विश्व ध्रुव भुवं नवा वोजीयो रुद्र त्वदासि ॥

इस मन्त्र पर सायणाचार्य ने यह व्याख्या की है:—

हे रुद्र ! त्वमर्हन् अर्हो योग्य एव सन् सायकानि शरान् धन्व धनुश्च विभर्षि धारयिष्यसि । तथा अर्हन्नवयंजतं यजनीयं विश्व-रूपं बहुविध रूपयुक्तं निष्क, हारं विभर्षि तथा अर्हन्नेव इदम् विश्वं सर्वम् ।

महन्नामैतन् अतिविस्तृतं जगत् दयसे रक्षसि (देह् रक्षणे) हे रुद्र त्वत् त्वतोऽन्यत् किञ्चित् ओजीय = ओजस्वितरं न वा नास्ति । खलु विद्यते । अतस्त्वमेवोक्तव्यापारेषु योग्य इत्यर्थः”

इस विवेचन में सायणाचार्य ने यद्यपि अर्हन् शब्द का अंतिम भावार्थ “योग्य” करके लिखा है, किंतु इसके लिये सन्देह करने की आवश्यकता नहीं है । क्योंकि इसमें ‘हे रुद्र’ तू अर्हन् रूप में (सर्व सत्ताधीश) विश्व सरक्षणादि करने के लिये धर्मोपदेश रूपी धनुष धारण करता है, और तू इतना बलवान् है कि तुझ से बढ़कर बली या ओजस्वी प्राणी इस अखिल ब्रह्माण्ड में भी नहीं मिल सकता । तेरा शासन इतना बलवन्तर है कि, कोई भी उस आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकता । इस प्रकार स्पष्ट अर्थ होनेसे यह मंत्र अर्हन् धर्म सम्बन्धी ही समझना चाहिये । क्योंकि अर्हन् की व्याख्या करते हुए “तू अर्हन् बन कर” ऐसा स्पष्ट लिखा गया है । फलतः केवल “योग्य” शब्द मात्र से अर्हन् की व्याख्या कर देना असंगत प्रतीत होता है । सायणाचार्य ने “सर्व दर्शन संग्रह” नामक ग्रंथ में जैन धर्म को अर्हन् धर्म कहा है । फलतः उपरोक्त अर्हन् शब्दकी वह व्याख्या इससे पुष्ट होती है । यह विवेचन सिद्ध करता है कि, वेद कालमें जैन धर्म का अस्तित्व था । इस वेद मंत्र का आधार लेकर “रयाद्वाद मंजरी” कर्ता ‘मल्लिषेण’ नामक कवि ने जिन शासन का वर्णन किया है —

य एव दोषा किल नित्यवादे विनाशवादेऽपि समस्त एव ।
परस्परध्वसिषु कंटकेषु जययदृष्य जिनशासनते ॥

नित्यवाद में जिन २ दोषों का समावेश होता है, वही अनित्यवाद में भी पाये जाते हैं । परस्पर ध्वंस करने वाली संसाररूपी त्रिपत्ति में तेरा निर्दोष जिन शासन सर्वत्र ही विजय पाता है । जैसा कि अर्हन् को त्रिमूर्ति स्वरूप मानकर पंडित हेमचन्द्र स्तुति करते हैं -

अकारेण भवेद्विष्णू रेफो ब्रह्मा व्यवस्थितः ।

हकारेण हर प्रोक्तस्तस्यांते परम पदेम ॥

अकार से विष्णु का सम्बोधन होकर रेफ (रकार) ब्रह्मा

का वाचक और 'ह' को हर स्वरूप समझकर सब के अन्त में प म प्रद कहा गया है ।

भवबीजांकुरजनना रागाद्या क्षयमुपागता यम्य ।

ब्रह्मा वा विष्णुर्वा हरो जिनो वा नमस्तभ्यै ॥

इति महादेवस्तोत्रे ।

समार बीज के अंकुर को उत्पन्न करने वाले रागाद्वेषादि विकार जिसके नष्ट होगये हैं, वह भले ही ब्रह्मा हो अथवा हर या जैन रूप हो—उसकी सेवा में मेरा नमस्कार है ।

य शैवा समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनां ।

बौद्धा बुद्ध इति प्रमाण पटवः कर्तेति नैय्यायिकाः ॥

अर्हन्निस्त्यथ जैन शासनरताः कर्मेति मीमांसकाः ।

सोऽयं वां विदधातु वाञ्छित फल त्रैलोक्यनाथो हरिः ॥

जिस की शैव लोग शिव कहकर उपासना करते हैं, वेदान्ती जिसे ब्रह्म करके मानते हैं, बौद्ध लोग जिसे बुद्ध समझते हैं, प्रमाण कुशल नैयायिक जिसे कर्ता बतलाते हैं, जैन धर्मानुयायी जिसे अर्हन् कहकर पूजते हैं, मीमांसक जिसे कर्म मानते हैं, वह त्रैलोक्य पालक भगवान् हमारी मनोकामना सफल करे ।

इसी प्रकार अदि-नाम स्तोत्र में कहा गया है कि —

बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चित बुद्धिबोधा ।

त्व शंकरोऽसि भुवनत्रय शंकरत्वात् ।

धाताऽसि धीरशिव मार्ग विधेर्विधानात् ॥ १ ॥

महाव्रान्ती लोग जिसे बुद्ध रूप से सम्बोधन करते हैं, वह त्रिभुवन कल्याणकारी शंकर स्वरूप तू ही है । इस पर से वह व्यक्ति अर्हन् नहीं वरन् परमेश्वर सिद्ध होता है । जिस प्रकार कि “न वै वेदाः प्रतीयन्ते महाप्रलयोऽपि” महाप्रलय में वेद नष्ट नहीं होते । इस प्रकार जहां त्रिकालाबाधित सिद्धान्त है वही वेदोक्त अर्हन् मत को भी ज्ञान रूप से त्रिकालाबाधित मानने में कोई रुकावट नहीं जान पड़ती ।

अस्तु । अब देखिये कि जैन धर्म के प्रथम उपदेशक तीर्थंकर ऋषभ देव के विषय में हमारे ऋग्वेद के आठवे अष्टक में क्या कहा गया है.—

ऋषभं मासमानानां सपत्नानां विपासहितं ।

हंतारं शत्रूणां क्रुधि विराजं गोपितं गवाम् ॥

ऋग्वेद अष्टक ८. व. २४.

यद्यपि सायणाचार्य ने इस मंत्र की व्याख्या करते हुए जैन धर्म के ऋषभ नामक तीर्थंकर का कहीं उल्लेख नहीं किया है, तथापि इस मंत्र में जैनधर्मोपदेशक ऋषभदेव वाचक ऋषभ शब्द को न मानना केवल दुराग्रह ही होगा । क्योंकि उस अर्थ का सूक्ष्म रीति से अवलोकन करने पर “हे रुद्र रूपी (रोदयतीति रुद्र = कर्मनाश करने वाला रुद्र) परमेश्वर तू अर्हन् नामक आदि पुरुष बनकर मुझे (मा) समानानां अर्थान् हम जैसे कुलीनो में विशाल ऋषभरूपी देवता को उत्पन्न कर । और वह विषेय रूप से शत्रुओं का नाश करने वाला हों (अर्थान् उसे काम क्रोधादि पङ्क्तिपुत्रों का दमन करने वाला बना) । रुद्रगण में के इस प्रथम सच्चिदानन्द ‘अर्हन्’ रूपी परमात्मा की प्रार्थना कर स्वयं ‘अर्हन्’ रूप में ही जैन धर्म के प्रथमोपदेशक ऋषभ के उत्पन्न होने की बात उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट सिद्ध होती है । इसी प्रकार आदिनाथ तीर्थंकर (ऋषभ देव) का वर्णन कुछ स्मृतियों में भी पाया जाता है ।

अष्टपष्टितीर्थेषु यात्रायां यत्फल भवेत् ।

श्रीआदिनाथ देवस्य, स्मरणेनापि तत्फलम् ॥

यह श्लोक हाल की छपी हुई मनुस्मृतितियों में तो नहीं मिलता, किंतु प्राचीन प्रतियों में अवश्य पाया जाता है । जान पड़ता है कि, जैन लोगो के विषय में द्वेष बुद्धि रखनेवाले लोगोने ही खासकर इस श्लोक को निकाल दिया है । फलतः जिस आशय से यह श्लोक निकाल दिया गया है—वह आदिनाथ, जैनियों का प्रथम तीर्थंकर ही होना चाहिये । इस श्लोक पर से स्पष्ट सिद्ध होता है कि, जैनधर्म का

अस्तित्व मनुस्मृति में पूर्व रहने विषयक जैनियों का सिद्धान्त युक्ति संगत है ।

जिस प्रकार हमारे यहां विष्णु के दश अवतार चात्रयो में माने गये हैं उसी प्रकार ये तीर्थंकर भी चात्रिय कुलोत्पन्न हैं चात्रिय कुल में इस प्रकार के महापुरुषों का उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है । क्योंकि तत्कालीन दुष्ट प्रगति को राज्यसत्ता द्वारा अवरोध कर उसे उचित मार्ग पर लगा देने की शक्ति चात्रियो में ही थी । अस्तु ।

इसी प्रकार ऋग्वेद में और भी एक स्थान पर कहा गया है —

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवा स्वस्तिन पूषा विश्ववेदाः ।

स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमि स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥

ऋग्वेद प्रथमाष्टक अ. ६ व, १६

अर्थ—“वृद्धश्रवा (अनंत स्तुतियों के लिये उपयुक्त) जो इन्द्रदेव है, वह हमारा (स्वस्ति) कल्याण करे । विश्ववेदाः (सर्व पदार्थों का ज्ञाता) और पूषा (अर्थात् पोषक परमात्मा) हमारा (स्वस्ति) कल्याण करे । अरिष्टनेमि (ससार सागर को पार कर जाने में समर्थ) ऐसा जो अरिष्टनेमि तीर्थंकर है वह हमारा कल्याण करे बृहस्पति (समस्त दिव्य पुरुषों का पालक) परमात्मा (न स्वस्ति दधातु) हमारा कल्याण करे ।” इस मंत्र में भी संसार रूपी चक्र जिन्हें कष्ट नहीं पहुँचा सकता अर्थात् जो जीवनन्मुक्त है, वही अरिष्ट-वाचक हो सकता है । अरिष्टनेमि शब्द का अर्थ सायणाचार्य ने “नेमि रित्यायुध नाम अरिष्टो अहिंसितो नेमिर्यस्य यद्वा रथचक्रस्य धारानेमिः यत्संबन्धिनो रथस्य नेमिर्नहिम्यन्ते सोऽरिष्टनेमि” इत्यादि उक्तियों द्वारा गरुड़ सिद्ध किया है । किंतु हम इससे सहमत नहीं । वास्तविक अरिष्टनेमि शब्द जैन धर्म के तीर्थंकर का ही बोधक है ।

यह शब्द ऋग्वेद और यजुर्वेद में कई जगह मिलता है, और अरिष्टनेमि का वास्तविक अर्थ हिंसा निवारण करनेवाला नेमि—अर्थात्

आयुध-फलत. जैन संन्यासी अहिंसा निवारण के लिये बगल में कपड़े का जो आयुध (जिसमें एक डगड़े पर कपड़ा चढ़ा हुआ और सिरे पर बारीक धागों का भारी गुच्छा रहता है) रखते हैं उसका वाचक है । और जिस तीर्थंकर के समय में उस आयुध के रखने की प्रथा चली है, उसी का नाम अरिष्टनेमि हुआ है । तथा उसी अरिष्टनेमि के वर्णनात्मक-अर्थात् प्राणी संरक्षक करने के लिये अस्त्र धारण करने का उपदेश देनेवाला साक्षात् ईश्वर रूपी तीर्थंकर हमारी रक्षा करे । इस प्रकार उपरोक्त वेद मन्त्र में स्तुति की गई है । यह मंत्र यजुर्वेद में जहां कहा गया है, वहां उच्यताचार्य ने अरिष्टनेमि का अर्थ “ अनुपाहमि-तासु ” (जिसके कारण प्राणियों की हिंसा नहीं होती) अर्थात् अहिंसा का उपदेशक किया है । फलतः यह अर्थ भी जैन धर्म के तत्वों की पुष्टि करता है ।

और भी ऋग्वेद में अरिष्टनेमि शब्द का उल्लेख देखिये —

न्यमू पु वाजिन देवजूत सहावानं तरुतार रथानाम् ।

अरिष्टनेमि घृतना जमायुं स्वतयं तार्क्ष्य मिहादुवंम् ॥ ऋ० अ. ८ व. ३६

इस मंत्र में भी अरिष्टनेमि एक तीर्थंकर का ही नाम है, और इस का अर्थ भी अरिष्ट अर्थात् अहिंसा पालने के लिये जो नेमि अर्थात् आयुध धारण किया जाता है, वह अरिष्टनेमि अर्थात् कत्त में उपरोक्त आयुध रखने की प्रथा डालनेवाला, अथवा इसी अरिष्टनेमि तीर्थंकर के समय से यह प्रथा चली-हो-इस प्रकार का होता है ।

शिव पुराण में उपरोक्त आयुध धारण करनेवाले जैन साधु का वर्णन पाया जाता है. —

मुंडं मलिन वस्त्रं च कुंडी पात्र समन्वितं ।

दधाना. पुंजिका हस्ते चालयत. पदे पदे ॥

हस्ते पात्रं दधानाश्च तुण्डे वस्त्रन्य धारका ।

मलितान्येव वासांसि धारयं तोऽल्प भाषिण ॥

अर्थात्:—मुंडन किये हुए, मलिन वस्त्र, कमण्डलु युक्त, हाथ में पुंजिका धारण करने वाले, रास्तों में घूमने वाले, हाथ में पात्रादि धारण किये हुए, मुंह पर कपड़ा बांधे, अल्पभाषी, मलिन वस्त्र धारण करने वाले जैन साधु है ।

इन श्लोको पर से भी शिवपुराण का निर्माण होने के पूर्व जैन धर्म का अस्तित्व सिद्ध होता है । यदि शिवपुराण के कर्ता महर्षि व्यास मान लिये जायँ, तो उनका समय जो पाँच हजार वर्ष पूर्व का कहा गया है—जैन धर्म के अस्तित्व हो जाने के बाद का निश्चित होता है ।

एक बङ्गाली वैरिस्टर ने 'प्रेक्टिकल पाथ' नामक ग्रन्थ बनाया है । उस में एक स्थान पर लिखा है कि ऋषभदेव का नाती मरीचि प्रकृतिवादी था, और वेद उस के तत्वानुसार होने के कारण ही ऋग्वेदादि ग्रन्थों की ख्याति उसी के ज्ञान द्वारा हुई है । फलतः मरीचि ऋषि के स्तोत्र, वेद, पुराण आदि ग्रन्थों में यदि स्थान स्थान पर जैन तीर्थकरों का उल्लेख पाया जाता है, तो कोई कारण नहीं कि हम वैदिक काल में जैन धर्म का अस्तित्व न मानें ।

सारांश यह है कि, इन सब प्रमाणों से जैन धर्म का उल्लेख हिन्दुओं के पूज्य ग्रन्थ वेद में भी मिलता है । और वह पूर्ण हिन्दू धर्म की ही एक शाखा माना जा सकता है । जो जैनियों को नास्तिक एवं अवैदिक बनला उन्हें हिन्दू समाज से अलग समझते हैं, वे केवल दुराग्रह ही कर रहे हैं । यद्यपि सायणाचार्य ने वेद में आये हुए किसी २ ऋषभ शब्द का तीर्थकर वाची अर्थ नहीं किया है, किन्तु फिर भी कोई यह सिद्ध नहीं कर सकता है कि वह शब्द तीर्थकर वाची नहीं है । क्योंकि सायण भाष्य कई जगह भ्रम पूर्ण है ।

उन्होंने "योगाद् रुढिर्बलीयसी" के अनुसार सर्वत्र ही रूढि-वाचक शब्दों का महत्व देकर तद्वत् पौराणिक कथानक का अनुसरण कर के वेद मन्त्रों का अर्थ किया है । किन्तु इन स्थानों में तीर्थकर

के रूढ़ नामानुसार अर्थ करना वे भूल गये हैं। यही नहीं, उन्होंने जैन धर्म के विरुद्ध और भी कुछ लिखा है। फलतः वे इस से द्वेष रखने के कारण जो कुछ कर गये उन के मतानुसार ठीक था ।

उन वेद मन्त्रों का निष्पत्त अर्थ हम ऊपर लिख चुके हैं। उन से निर्विवाद सिद्ध होता है कि, वे जैन तीर्थंकरों को सम्बोधन कर के ही लिखे हैं। इस विवेचन पर से और भी एक बात सिद्ध होती है कि—उस समय जैन एवं वैदिक धर्म में परस्पर पूर्ण सहानुभूति थी। क्योंकि यदि ऐसा न होता तो कभी सम्भव न था कि, तीर्थंकरों का इस प्रकार गौरव के साथ उल्लेख किया जाता। इस प्रकार वेदों में जैन धर्म का अस्तित्व सिद्ध करने वाले बहुत से मन्त्र हैं। वेद के सिवाय अन्य ग्रन्थों में भी जैन धर्म के प्रति सहानुभूति प्रकट करने वाले उल्लेख पाये जाते हैं। पीछे से जब ब्राह्मण लोगो ने यज्ञ यागादि में बलिदान किया का समावेश कर “मा हि स्यात् सर्व भूतानि” वाले वेद वाक्य पर हर्नाल फेर दी, उस समय जैनियों ने उन हिंसामय यज्ञयागादि का उच्छेद करना आरम्भ किया था। वस, तभी से ब्राह्मणों के चित्त में जैनो के प्रति द्वेष बढ़ने लगा। किंतु फिर भी भागवतादि महापुराणों में ऋषभ देव के विषय में गौरव पूर्ण उल्लेख मिल रहा है।

जैन धर्म नौ तत्वों पर अवलंबित है, यह बात निम्न लिखित प्रमाण पर से सिद्ध होती है—

“ज्ञान दर्शन चरित्रस्य वर्गस्य वर्त्मनि स्याद्वादस्य प्रमाणे द्वे प्रत्यक्षमनुमापि च नित्यानि त्यात्मकं सर्वं नव तत्वानि सप्त कै ।”

इसका स्पष्टीकरण करने के साथ २ हम यह भी दिखलावेगे कि, इन नौ तत्वों में से कौन २ से तत्व वैदिक धर्म से किस प्रकार मिलते हुए हैं।

उन में सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन, और सम्यक् चरित्र

ही मुख्य माने गये हैं, और इन्हीं के द्वारा निर्वाण पद प्राप्ति का वर्णन किया गया है । जिस प्रकार अद्वैतवादी स्वामी शंकराचार्य “सत्संग स्वाध्याय और सद्विचार” को ही मुक्ति साधन मानते हैं, उसी प्रकार “सम्यग्दर्शन ज्ञानं चारित्र्याणि मोक्षः” के रूप में जैन ग्रन्थकारों का भी मत है । यहां पर उल्लिखित सम्यग्दर्शनादि की व्याख्या योग-देव प्रभृति विद्वानों ने की है ।

यथावस्थिततत्त्वानां संक्षेपाद्विस्तरेणवा ।

याऽवबोधस्तन्मत्रावहुः सम्यग् ज्ञान मनीषिणः ।

किसी पदार्थ का यथार्थ ज्ञान—उसके स्वरूपानुसार संक्षेप या विस्तार पूर्वक—कर लेना ही सम्यक्ज्ञान कहलाता है ।

रुचिर्जिनोक्त तत्त्वेषु सम्यग् श्रद्धानमुच्यते ।

जायते तन्निसर्गेण गुरोरधिगमेनवा ॥

अर्थात्—जिनोक्त तत्वों में प्रेम ही श्रद्धा माना जाता है, और वह श्रद्धा स्वाभाविक रीति से अथवा गुरु उपदेश द्वारा प्राप्त होती है । जिस प्रकार कि जीवादिक अर्थ व्यवस्थित हैं, उसी प्रकार अर्हन् का ज्ञान भी है, और उसके विरुद्ध आप्रह्म न करना ही सम्यक् दर्शन है । चारित्र्य का भावार्थ यथार्थ चरित्र व्रत धारण करना है, इसके पांच भाग माने गये हैं । वे भाग, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अग्रिमह हैं । इन में से प्रथम अहिंसा के विषय में वेद शास्त्राधार लेकर विचार किया जाता है । योगशास्त्रादि ग्रन्थों में अहिंसा की प्रशंसा की गई है । यथा: —

“अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्संनिधौ वैरत्यागः ।”

पातञ्जलि योग दर्शन साधनपाद सूत्र ३५ ।

अर्थात्, जो मनुष्य स्वप्न में भी हिंसा का विचार नहीं करता, उस पवित्रात्मा के निकट स्वाभाविक वैरी—व्याघ्रादि हिंसक प्राणी भी अपना वैरभाव भूलकर अत्यंत प्रेमी बन जाते हैं । इसी प्रकार व्यास (भाष्यकार) का कथन है—

“सर्वदा सर्वथा सर्व भूतानामनभिद्रोह अहिंसा ज्ञेया ।”

सब प्रकार से सदा सर्वदा किसी भी प्राणी को कष्ट न पहुँचाने का नाम अहिंसा है । जब कि किसी भी प्राणी के दुःख न पहुँचाने का अर्थ अहिंसा किया जाता है, कभी सम्भव नहीं कि उस (वैदिक) धर्म में उन्हीं महापुरुषों ने प्राणि-वध करने की आज्ञा दी हो । यही नहीं वरन् जब हम भोजन करने के लिये बैठते हैं, तब भी अन्न की आशा से कोई भी प्राणी पृथ्वी पर रखे हुए भोजन पात्र में न गिर पड़े—इस आशय से उस के चारों ओर जल फिराते हैं । इसे “ ईश्वरार्थ ” (ब्रह्मार्पण भी) कह कर उसके प्रति आदरभाव व्यक्त किया गया है । भूतदया प्रगट करने के लिये उस जल मर्यादा के बाहर हम प्रथम तीन प्रास निकाल रखते हैं, क्योंकि आये हुए प्राणी भीतर न आकर बाहर डाले हुए अन्न से तृप्ति कर के अपने प्राण बचाले इसी उद्देश्य से ऋषियों ने देवताओं के निमित्त वैश्वदेवबलि और नैवेद्य एवं जल सींचने की प्रथा चला दी है । देवता के सन्मुख नैवेद्य रखने का भाव यह है कि, “ हे ईश्वर यह सब कुछ तेरा ही है, इस में मेरा कुछ भी नहीं । ” इस प्रकार उसके प्रति अनन्य श्रद्धा प्रगट की जाय । इसी प्रकार वैश्वदेव बलि का आशय भी “ त्रिदिव (संसार) में दिव्य जीव धारण करने वाले प्राणिमात्र को अन्नदान ही ” है । और इसी लिये भोजन करते समय प्राणियों को अन्नदान करने की प्रथा चलाई गई है ।

इसी भांति—महाभारत के शांति एवं वनपर्व में भी सर्वत्र ही भूतदया रखने का विशद वर्णन पाया जाता है । अर्थात् अहिंसा के विषय में वैदिक धर्म में सर्वत्र ही प्रतिपादन किया गया है । जैनधर्म के श्वेताम्बर और दिगम्बर ये दो भेद हैं । उसमें भी फिर श्वेताम्बरों में मूर्तिपूजक अर्थात् मन्दिर मार्गी और साधु मार्गी इस प्रकार दो अन्तर्भेद हैं । दिगम्बर केवल मूर्ति पूजक होते हैं, और नम्र भाव (निरंजत) को विशेष मान देते हैं । इन दोनों में मुंह पर पट्टा लगाने और हाथ में पुंजिका धारण कर अहिंसा व्रत पालन करने वाले केवल श्वेताम्बर

जैन पथ प्रदर्शक



राजा वृजनाथसिंहजी बहादुर
मैहर स्टेट

जैन पथ प्रदर्शक



दीवान हीरालालजी गणेश भाई अन्नजरिया वी. ए.

मैहर स्टेट

Printed by W. G. Banerji & Co. Ltd.

जैनी होते हैं । मुँह पर कपड़ा रखने का आशय यह है कि, श्वासोच्छ्वास से प्राणी नहीं मरें अथवा पेट में पहुँच कर आरोग्यता को बाधा न पहुँचावें । यह तथा इसी प्रकार की अ यान्य कई क्रियाओं को देख कर हम जैनियों की हँसी उड़ाते हैं, किन्तु विचार कीजिये कि यह कितनी बुरी बात है । क्योंकि यथार्थ में ही यदि देखा जाय तो हमारे सन्यासी और जैन साधुओं की कई क्रियाएँ मिलती हुई हैं । महाराष्ट्र प्रांत में आज भी अपने को वैदिक कहने वाले कई दक्षिणी ब्राह्मण और साधु संन्यासियों में मुँह बांधने की प्रथा पाई जाती है । और ऐसा करने में जो उद्देश्य जैन साधुओं का है, वही हमारे महात्माओं का भी है तब विचार का स्थान है कि हम जैनियों की हँसी क्यों उड़ावे ? हम तो यही समझते हैं कि, वे अभी तक साधुओं के व्रतों का पालन करते हैं और हम लोग तथा हमारे साधु महात्मा कहाने वाले गुरु ठाटपाट में लिप्त हो जाने से उनका यथार्थ पालन नहीं कर पाते । बस, इसी से हमें उन पर हँसी आती है । जिस प्रकार हमारे यहां संन्यासियों के लिये धर्म बतलाया गया है कि, वे अग्नि का स्पर्श न करें, रात को दीपक न जलावे, भोजन बनाकर न खावें, भिक्षा मांग कर लावे, पास द्रव्य न रक्खे, एक ही स्थान पर अधिक दिन न ठहरे रहे, थोड़े वस्त्र रक्खे, और ब्रह्मचर्य का पालन करे इत्यादि । इसी प्रकार के नियम जैन साधुओं के भी हैं । किन्तु हमारे सन्यासी लोग गृहस्थों का सा आचरण रखते हैं और जैनियों के इससे विरुद्ध । इसी कारण वे हमें नये और चमत्कारिक प्रतीत होते हैं, और हम उनकी हँसी उड़ाते हैं । इसी प्रकार जैनियों के अहिंसा सम्बन्धी नियमों को देख कर भी हम उनकी हँसी उड़ाते हैं, किन्तु इस प्रकार केवल उनका मजाक उड़ाना ही न्याय्य नहीं कहा जा सकता क्योंकि —

“न हिम्यात्सर्वभूतानित्यादि चांडाल साधारणो धर्मः ।”

इस प्रकार विज्ञानेश्वर ने प्रतिपादन किया है, और इसीलिये मनुष्य मात्र को जल जीवों तक की हिंसा न करने के विषय में भागवत पुर्ण में आज्ञा दी गई है कि.—

“सूक्ष्माणि जंतूनि जलाश्रयाणि जलस्य वर्णाकृति संस्थितामि ।
तस्माज्जलं जीव दयानिमित्तं निरग्र शूरा परिवर्जयन्ति ॥”

जल का आश्रय लेकर सूक्ष्म जन्तु उसमें रहते हैं, और वे जल वर्णाकृति से युक्त हैं । इसलिये जीव दया के निमित्त-भूत जल को तत्वज्ञानी छोड़ देते हैं (निर्जल व्रत करते हैं ।)

इसी प्रकार “वस्त्रपूतं जलंपिवेत्” अर्थात् पानी को हमेशा छान कर पीने की आज्ञा महाभारतमें भी दी गई है । इस भांति अहिंसा पालन का व्रत भूल जाने के कारण हम जैनियों के इस कार्य पर आश्चर्य करते और उनकी हँसी उड़ाते हैं ।

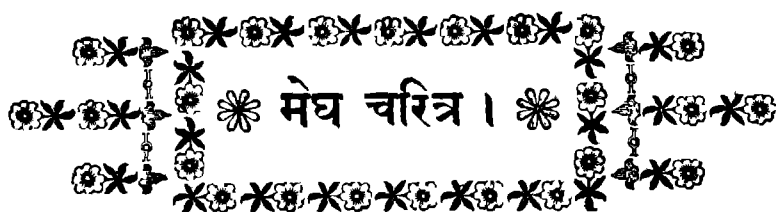
हिंसा न होने देने के लिये ही जैनी लोग रात को भोजन नहीं करते । किन्तु याद रखना चाहिये, कि यह नियम केवल उन्हीं में प्रचलित नहीं, वरन् हमारे यहां भी महाभारत में कहा गया है कि—

नैवाहुतिर्न च स्नानं न श्राद्धं देवतार्चनम् ।

दानं न विहितं रात्रौ भोजनं तु विशेषतः ॥

अर्थात्—रात को आहुति दान, स्नान, श्राद्ध, देवपूजा और न दान करना चाहिये, और खासकर भोजन बिल्कुल ही नहीं ।

इस प्रकार हमारे शास्त्रों में भी निशा भोजन वर्ज्य कहा गया है । उनमें तो यहां तक कि बैठते हुए भी हिंसा न होने पावे, इस आशय से पुजिका द्वारा उन (जीवों) को हटा देने की प्रथा प्रचलित है, और इसीलिये जैन साधु उसे हमेशा पास में रखे रहते हैं । इस विधि के भी वैदिक धर्म में होने की संभावना है । क्योंकि “अरिष्टनेमि” आदि शब्दों पर से यही भाव निकलता है । सारांश, अहिंसा धर्म का पालन करने के लिये जैनी लोग जिन २ उपायों का अवलम्बन करते हैं, वे सब वैदिक धर्म में सम्मत हैं । यही नहीं वरन् वे सब वेद स्मृति इतिहासादि आर्य ग्रंथों में भी पाये जाते हैं । इस कारण उन्हें (जैनियोंको) अवैदिक और अनधिकारी कहना सर्वथा भ्रममूलक सिद्धान्त है ।



(लेखक-श्री० प० रामचरित जी, उपाध्याय ।)

(१)

वैताल्याद्रि निकट वन में था मेरुभूत नामक हाथी ।

उसे मिली थी स्त्रियां सात सौ और न कोई था साथी ॥

नौ हाथों का लम्बा था वह सात हाथ का ऊंचा था ।

वाल सूर्य सा लाल कलेवर उसका बना समूचा था ॥

(२)

प्रायः उस वन में वांसों के अमित वृक्ष थे खिले हुए ।

मिले हुए हो यथा कुटुम्बी प्रेम-तन्तु से सिले हुए ॥

किन्तु परस्पर के रगड़े से उनमें दहन निकलता था ।

विविध प्राणियों सहित गहन वह हा । मरघट सा जलता था ॥

(३)

लोहे पत्थर के लड़ने पर भी जब आग निकलती है ।

अति शीतल चन्दन की लकड़ी भी लड़ करके जलती है ॥

फिर वांसों की क्या गिनती है जो लड़ कर जलजाते हैं ।

शून्य हृदय पर भले भाव क्या कभी स्वप्न में आते हैं ? ॥

(४)

कहां परस्पर लड़ कर किसने कभी सुयश सुख पाये हैं ।

फूट वैर के क्या मीठे फल कभी हाथ में आए हैं ? ॥

कौरव पाण्डव यादव की भी कथा किसे है ज्ञात नहीं ।

घरू लड़ाई से बढ़ कर के बुरी दूसरी बात नहीं ॥

(५)

नभ में तारे हिल मिल कैसे शशी-सहित सुख पाते हैं ।

विमल वारि में वारिज कैसे फूले नहीं समाते हैं ॥

नद-नदियो से यदि मिल करके वारिधि करता काम नहीं ।

तो मर्यादा-मिश्रित पाता वह रत्नाकर नाम नहीं ॥

(६)

मेरुभूत ने यही विचारा “दुर्वशो से दूर रहे—

व्यर्थ कपूतों से मिल कर क्यों हम भी दुस्मह दुःख सहे ? ॥

जो न अनल से लोहा मिलता घन की चोट नहीं खाता ।

यदि रात्रण के पास न रहता वारिधि क्यों बांधा जाता ? ॥

(७)

मेरुभूत ने उसी गहन में एक बड़ा मैदान किया ।

वृक्ष भाड़ियो को उखाड़ कर दूर दूर में फेंक दिया ॥

घर के भीतर आंगन हो ज्यो त्यो वन में वह था मैदान ।

कर्मवीर के लिए सहायक होता है जगदीश कहां न ? ॥

(८)

साथ हथिनियो के बेखटके हाथी रहने लगा वही ।

दावानल का तनिक स्वप्न में भय था उसको वहां नहीं ॥

उसने अपने “करी” नाम को सार्थक कर दिखलाया था ।

पशु होकर भी मनो जगत को शिल्प-मंत्र सिखलाया था ॥

(९)

एकाएक ग्रीष्म ऋतु जग में आ पहुंचा फिर चैन कहां ?

दावानल धक्का उस वन में भगे जन्तु सब जहाँ तहाँ ॥

ग्रीष्म-तप्त जीवों को कैसे दावानल ने दुःख दिया ।

मनो जले पर नोन छिड़कर कर दुर्विधि ने उपचार किया ॥

(१०)

ग्रीष्म-ताप से तप्त जन्तु सब मन में अतिशय व्यथित रहे ।

पानी के बदले में कैसे दावानल के आंच सहें ? ॥

जैन पथ प्रदर्शक

मेघ कुँवर के पहिले जन्म का एक दृश्य ।



विद्या सागर और गुणाकर नय-नागर है जीव वही ।
परोपहित मे तन मन धन को जो देने से मुरे नहीं ॥
मेरू भूतने पशु होकर भी बड़े बड़ों का काम किया ।
मानव तनुधारी दानव को मानों शुभ उपदेश दिया ॥

आग उगलते थे रवि-भूतल, घन जलता था चारो ओर ।

प्रलय-काल सा काल उपस्थित हुआ विपिन में अतिशय घोर ॥

(११)

चातक से हो गये जीव सब, सूर्य लोक सा विपिन हुआ ।

निस्सहाय वन्धों का जीना वन में अतिशय कठिन हुआ ॥

अशरण होकर शरण खोजने लगे जन्तु सब दुष्ट हताश ।

प्राण बँचाने की चिन्ता से सब के भूले भोग विलास ॥

(१२)

बाल वृद्ध को कौन सम्हाले सब को अपनी पड़ी रही ।

प्रलय काल के दृश्य दिखाने को वह मानो घड़ी रही ॥

कहीं पखेरू कहीं चतुष्पद अण्डे बच्चे जलते थे ।

कहीं अधजले जन्तु बेचारे गिरते पड़ते चलते थे ॥

(१३)

स्त्रियो सहित पर मेरुभूत था स्थित अपनी भू पर सानन्द ।

उसे देख कर सुखी; वहीं पर धीरे आ पहुँचा पशु-वृन्द ॥

भक्तक भक्ष्य भाव को तज कर द्रोह सबो ने छोड़ दिया ।

अतिथि मान कर मेरुभूत ने सब का शिष्टाचार किया ॥

(१४)

स्थूल देह है व्यर्थ उसी की और खेद सय है सम्पत्ति ।

दाय-द्रवित जो हो न चित्त में देख पराये की आपत्ति ॥

शक्तिमान हो शरणागत का स्वागत जिसने नहीं किया ।

प्रसव-वेदना देकर मा को उसने नाहक जन्म लिया ॥

(१५)

विद्या सागर और गुणाकर नय-नागर है जीव वही ।

परोपहित मे तन मन धन को जो देने से मुरे नहीं ॥

मेरुभूत ने पशु होकर भी बड़े बड़ों का काम किया ।

मानव तनुधारी दानव को मानो शुभ उपदेश दिया ॥

(१६)

मेरुभूत के सौम्य भव से वहाँ प्रेम-पाथोधि बहा ।

भाई भाई हुए सभी मृग से न मृगाधिप-भेद रहा ॥

क्यों न बड़ों के सदाचार के छोटे भी अनुगामी हों ।

या छोटे भी सदाचार-रत क्यों न बड़ों के स्वामी हों ॥

(१७)

तिल भर भी उस सुथरे स्थल पर रहा न खाली स्थान कही ।

जिस विधि जिसे जहाँ पर भाया दबक रहा वह जन्तु वही ॥

एक एक से सटे हुए थे कांप रहे थे हो भयभीत ।

दावानल को देख रहे थे होकर सभी सभी के मीत ॥

(१८)

इसी बीच मे मेरुभूत निज तन खुजलाने लगा कही ।

गज का पग था उठा जहाँ से शशक एक आ डटा वही ॥

गज ने जब खरहे को देखा तीन पगो से खड़ा रहा—

तीन दिनो तक बड़े धैर्य से हृदय-विदारक दुःख सहा ॥

(१९)

दावानल के बुझ जाने पर चले गये फिर जन्तु सभी ।

हाथी भी निज उठे हुए पग भू पर रखने लगा तभी ॥

पर बिछुड़ा पग तनिक न फैला हाथी गिरा पछाड़ा स्वाय ।

धन्य ! पराये जीवन के हित जिस प्राणी का जीवन जाय ॥

(२०)

श्रेष्ठ वासना थी उस गज की भरे रहे उसमे शुभकर्म ।

उभय लोक हैं उसके हाथो जिसको रुचा अहिंसा धर्म ॥

जैसे कर्म कीजिए वैसे फल भी चखना पड़ता है ।

सुपन-सेन पर सपने में भी शूल किसी को गड़ता है ? ॥

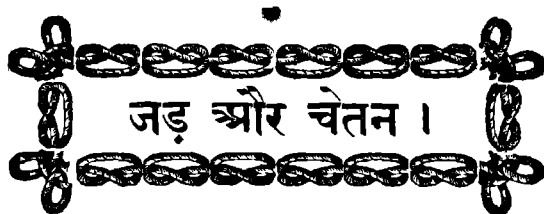
(२१)

मगधेश्वर श्रेणिक नृप के घर जाकर गज उत्पन्न हुआ ।
 “मेघ” नाम से जैन-जगत में प्रख्यापित व्युत्पन्न हुआ ॥
 किसी योनि में किसी जाति में जीव करे यदि अच्छे कर्म ।
 लोक-प्रशंसित वह होता है उसका सदा सहायक धर्म ॥

(२२)

पशु से बढ़ कर वे नरपशु हैं जिन्हें दया-संचार नहीं ।
 भूमि-भार है बने जिन्होंने किया धर्म का प्यार नहीं ॥
 जो समर्थ हो असमर्थों के लिए समर्पित रहते हैं ।
 जनम सफल उनका ही है जो पर-सुख को सुख कहते हैं ॥

—::०::—



(लेखक—श्री० महावीर प्रसाद जी, श्रीवान्तव ।)



धारण मनुष्य जड़ उसको समझते हैं जिसको सुख दुःख अनुभव करने की सामर्थ्य न हो अथवा जो अपना सुख दुःख किसी से प्रकट न करसके और न सुख दुःख पहुंचाने वाले को उत्तर देसके । इसी कारण चलते फिरते प्राणी चेतन और न चल फिर सकने वाले प्राणी जड़ समझे जाते हैं । परन्तु तत्त्वदर्शी अथवा भगवद्भक्त ऐसा नहीं समझते । उनको तो ‘रोम रोम प्रति राजही कोटि कोटि ब्रह्माण्ड’ ऐसे तत्त्वदर्शी महात्माओं के ही उपदेश का यह फल है कि भारतवर्ष में अब तक ऐसे लोग बहुत पाये जाते हैं जो हरे भरे पेड़ों

को कटाना पाप समझते हैं परंतु ऐसे विचार दिन प्रतिदिन कम होते जा रहे हैं और आजकल तो हरे भरे बागों को कटवाकर खेत बनवा देने में ही लोगो को लाभ जान पड़ता है । ऐसे समय में विज्ञानाचार्य जगदीशचन्द्र वसु के आविष्कार ने वैज्ञानिक संसार में अत्यन्त महत्वपूर्ण उथलापथल कर दिया है । वसु महोदय ने १५,३० वर्ष के अनुभव से सिद्ध कर दिया है कि जिसको लोग जड़ समझते हैं उनको भी सुख दुःख का ज्ञान होता है और वे भी अपने सुख दुःख को प्रकट करते हैं हममें ही इतनी क्षमता नहीं है कि उनके सुख दुःख का पता लगा सकें वास्तव में वे भी दुःख से उसी प्रकार कातर होते हैं जैसे कोई जीवधारी प्राणी ।

इसका प्रमाण देने के लिए वसु महोदय ने दो तीन ग्रन्थ अंग्रेजी में लिखे हैं और आपने संसार भर के प्रधान वैज्ञानिक केन्द्रों में कई बार जाकर व्याख्यान दिये हैं । इनसे सिद्ध होता है कि पौधे ही नहीं वरन् धातु भी सुखदायक वस्तुओं से सुखी, दुःखप्रद वस्तुओं से दुःखी, और विष से मृत्यु को प्राप्त होते हैं, हां इसके अनुभव के लिये विशेष क्षमता की आवश्यकता होती है । जैसे हम केवल आंखों से सूक्ष्मातिसूक्ष्म जीवाणुओं का पता नहीं चला सकते परन्तु सूक्ष्मवीक्षण यन्त्र से उन्हीं को आंखों के सामने नाचते हुए देखते हैं । जैसे केवल कानों से हम मील दो मील दूर की कही हुई बात नहीं सुन सकते परन्तु टेलीफोन से हजारों कोस की दूरी पर बैठे हुए एक दूसरे से बातचीत कर सकते हैं, वैसे ही वसु महोदय के बनाये हुए यंत्रों से हम पौधों और धातुओं के क्षण क्षण के अनुभव को प्रत्यक्ष देख सकते हैं और बतला सकते हैं कि चुटकी से दवा देने पर पौधों में भी उसी प्रकारकी ऐठन होती है जैसी अन्य जीवधारियों में । बलबद्धक औषधियों के प्रयोग से उन में भी उत्तेजना बढ़जाती है और जिन औषधियों से मनुष्य या जानवरों में क्षीणता उत्पन्न होती है उनसे पौधें भी शिथिल पड़ जाते हैं और जैसे बहुत जोर से चोट लगने पर या पशु कुछ देरके लिए बेहोश हो जाते हैं वैसे ही पौधे भी, और जैसे

अच्छी औषधि के प्रयोग से मनुष्य की बेहोशी दूर होजाती है वैसे ही पौधों की भी । फिर यह कैसे कहा जा सकता है कि (मनुष्यो और पौधो) इन दोनों की जीवन क्रियाएं भिन्न भिन्न हैं और एक का दूसरे से कोई सम्बन्ध नहीं है ?

यह तो सभी जानते हैं कि कुछ पेड़ों और पौधों की पत्तियां दिन में हरी भरी रहती हैं और सन्ध्या होते ही सिकुड़ जाती हैं, रात भर वैसी ही सिकुड़ी रहती है और सबेरा होते ही फिर फैल जाती हैं । वसु महोदय ने अपने यन्त्रों से यह दिखा दिया है कि जैसे जीवधारियों में पीड़ा अनुभव करने की शक्ति प्रत्येक क्षण एक सी नहीं रहती वैसी ही पेड़ों की भी दशा है । प्रयोगों से यह जान पड़ा कि पौधों की चेतनता मध्याह्न में सब से अधिक होती है, जैसे जैसे रात बीतती है चेतनता घटती जाती है यहां तक कि प्रातःकाल कुछ भी नहीं रहजाती । कुछ देर के बाद चेतनता आने लगती है और मध्याह्न में सबसे अधिक होजाती है । ऋतु के अनुसार भी चेतनता घटती बढ़ती रहती है । क्या इससे यह शिक्षा नहीं मिलती कि जिस समय पेड़ों की चेतनता कुछ नहीं होती उस समय यदि चोट पहुँचायी जाय तो उनको दुख नहीं होगा जैसे क्लोरोफार्म इत्यादि के प्रयोग से मनुष्यों की चेतनता नष्ट करके शरीर के किसी अंग के चीरने फाड़ने से कोई छेश नहीं होता, जीवधारियों और पौधों के जीवन में इतनी समता है कि जैसे असह्य पीड़ा के कारण मनुष्य कभी कभी मरजाते हैं परंतु बेहोश कर देने पर चाहे जो कुछ किया जाय कुछ पीड़ा नहीं जान पड़ती और न पीड़ा के कारण मृत्यु होती है उसी प्रकार पेड़ों को भी बेहोश करके आप उनको एक स्थान से हटाकर दूसरे स्थान पर लगा सकते हैं और दवा देकर उनको निरोग कर सकते हैं । वसु महोदय ने अपने गवेषणालय में दो बड़े बरगदके पेड़ इसी प्रकार बेहोश करके दूरसे लाकर लगाये हैं ।

वसु महोदय के इन आविष्कारों से कृषि, आयुर्वेद तथा मनो-विज्ञान की भी बहुत सी जटिल समस्याएं सरल होगई हैं जिनसे लोग

बहुत कुछ लाभ उठा सकते हैं । इन लाभों की साधारण जानकारी रखना प्रत्येक भारतवासी का कर्तव्य होना चाहिये । नीचे संक्षेप में यही बतलाया जाता है—

कृषि की थोड़ी बहुत जानकारी रखने वाले भी यह जानते हैं कि कौनसा पौधा कैसे खाद पानी से अच्छी तरह बढ़ेगा और कैसे खाद पानी से उसकी बाढ़ रुक जायगी । आजकल बहुत से प्रयोग इसी विचार से किये जा रहे हैं कि अमुक बीज के लिए कौन खाद बहुत अच्छा होगा और सर्दी, गर्मी तथा पानी की, किस मात्रा से उसका पौदा निरंतर बढ़ता हुआ बहुत जल्द अपनी पूरी बाढ़ तक पहुंच सकता है । परंतु ऐसे प्रयोग घंटे दो घंटे अथवा दो चार दिन में पूरे नहीं हो सकते । इनके लिये वर्षों परिश्रम करने की आवश्यकता पड़ती है । फिर भी यह नहीं जाना जा सकता कि बीच में कब और क्यों इनकी बाढ़ रुक जाती है । वसु महोदय के बनाये यंत्र से आप मिनट दो मिनट में ही यह सब जान सकते हैं । इनका 'वृद्धि सूचक' (Crescograph) यंत्र एक सेकंड के सौवें भाग में ही पौदे के घटने बढ़ने का पता लगा सकता है और एक इंच के ढाई करोड़वें भाग ($\frac{1}{100000000}$ इंच) के बराबर बाढ़ को भी बतला देता है । इसी यंत्र के सम्बन्ध में आस्ट्रेलिया के 'ऐडवर्टाइजर' पत्र ने लिखा है—

“यह आविष्कार प्रत्येक मनुष्य पर अपना प्रभाव डालेगा । यह बहुत सम्भव है कि दो ही एक वर्ष में इसका प्रमाण घर घर मिलने लगे । क्योंकि अब तो किसान भोजन उत्पन्न करने की उत्तमोत्तम रीतियां बड़ी सरलता से जान सकते हैं । अब यह जानने के लिए कि किस खाद का प्रभाव कैसा पड़ता है उसको सालभर तक परखना नहीं पड़ेगा । अब तो उन्हें बीजको और खाद को यंत्र में रख देना होगा फिर तो तुरंत ही पर्दे पर प्रकाश की गति से वह जानलेंगे कि खाद उस बीज के लिये हितकर है अथवा अहितकर । सर जगदीश वसु ने यंत्र द्वारा यह भी दिखा दिया है कि जो पदार्थ किसी पौधे के लिये हलाहल विष समझे जाते थे थोड़ी मात्रा में देने से उसके पोषक हो जाते हैं । क्या यह

सम्भव नहीं है कि इस अद्भुत यंत्रसे परीक्षा करके ऐसी रीति जान ली जाय जिससे साल में तीन फसलें तैयार हो सकें और उसर भूमि भी उपजाऊ और हरी भरी की जा सके ? अभी तक किसी जादूगर ने अपनी भोली से ऐसा अद्भुत दृश्य नहीं दिखाया है जैसा डाक्टर बोस ने अपनी प्रयोगशाला में दिखादिया है । बरसोंसे इनकी गणना भारत-वर्ष के महापुरुषों में होगई है ।

प्रोफेसर वसु के आविष्कारों से वैद्य और डाक्टरों को भी रोगी की दशा ठीक ठीक जानने में सुविधा होजायगी और वे सहज ही यह बतला सकेंगे कि किसरोगी को कौन सी औषधि देने में लाभ होगा। रायलसोसाइटी आव मंडिसिन में व्याख्यान देते हुए वसु महोदय ने अन्न में कहा था—“मैंने छोटे से व्याख्यान में अपने प्रयोगों के उन परिणामों का वर्णन किया है जिनसे पौधों का सम्बन्ध हमसे इतने निकट का हो जाता है जितना कभी विचारमें भी नहीं हुआ था । हमको अनुभव होता है कि ये केवल घास पात ही नहीं हैं वरन् इनके एक एक तन्तु में चेतना शक्ति है । हम देखते हैं कि बाहरी उत्तेजकों के प्रयोग करने पर यह उत्तर देते हैं और जैसे जैसे धक्के का बल अधिक होता है तैसे तैसे पौधों की ऐठने बढ़ती जाती हैं । इन बातों में और अन्य अनेक रीतियों में मनुष्य और वनस्पतियों की जीवन क्रियाएँ एकसी हैं । इस प्रकार पौधों के द्वारा जो कुछ अनुभव हो सकता है उससे मानव जाति के दुःख दूर करने में बड़ी सहायता मिल सकती है ।”

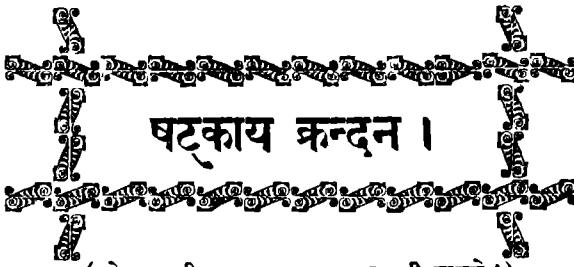
इन आविष्कारों का मनोविज्ञान पर क्या प्रभाव पड़ेगा इसका अनुमान Current opinion नामक पत्र के एक छोटे से उद्धरण से हो सकता है। प्रोफेसर वसु अनुभव मूलक आविष्कारों अथवा व्यावहारिक विज्ञान से ही सन्तुष्ट नहीं होजाते, उन्होंने यह सिद्ध कर दिया है कि बाहरी बाधाओं को दमन करने के लिये शरीर में जो क्षमता है उसमें संकल्प शक्ति (will) का बहुत कुछ भाग होता है ।

उनका यह दृढ़ विचार है कि दुःख अनुभव करने की मात्रा दुःखदाई पदार्थ की मात्रा पर ही निर्भर नहीं है, संकल्प शक्ति के प्रबल या निर्बल होने पर भी दुःख कम या अधिक जान पड़ता है। संकल्प शक्ति के बल से स्नाय की आणविक प्रकृति में इतना परिवर्तन किया जा सकता है कि दुःख जान ही न पड़े। या यो कहिए कि मनुष्य भाग्य के हाथ में कठपुतली की तरह नहीं है वरन् स्वयम् भाग्य विधाता है।”

ऊपर जिस बातकी चर्चा की गयी है उसके उदाहरण हर देश और काल में पाये जाते हैं। संसार में जितने महापुरुष हो गये हैं उनमें संकल्प शक्ति की मात्रा बहुत अधिक पाई जाती है जिसके बल से वे सत्य पथ पर चलने के लिये आग, पानी, शूली फांसी किसी से नहीं डरते और महान् दुःख को वे उसी प्रकार सह लेते हैं जैसे साधारण मनुष्य सुई के चुभने को हँसता हुआ सह लेता है।

क्या प्रोफेसर वसु के इन आविष्कारों की जानकारी हो जाने पर भी कोई कह सकता है कि उन पौधों में, जिन को अब तक संसार जड़ समझे हुये था, चेतन शक्ति नहीं है ? और उन पर मनमाना अत्याचार करने पर भी हिंसा नहीं हो सकती ?

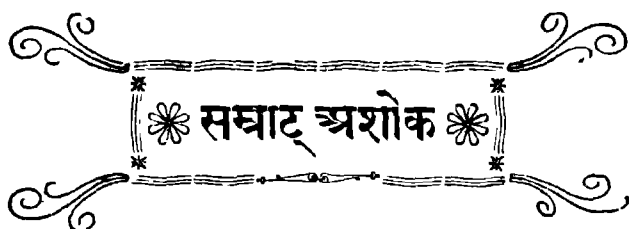




षट्काय क्रन्दन ।

(लेखक—भृगुत ५० रूपनारायण जी पाण्डे ।)

जब श्री महावीर प्रभु पृथ्वी लगे छोड़ने मुक्ति-सनाथ ।
 तब खट दीनकाय यो बिनती करने लगे जोड़ कर हाथ ॥
 “तुम तो प्रभुजी मुक्ति प्राप्त कर हमको छोड़े जाते हो ।
 हमको कौन सहारा स्वामी, पृथ्वी पर बनलाते हो ?
 गति की शक्ति विकल तनु पाया कुछ भी जोर न चलता है ।
 अहो अपाहिज हम हैं स्वामी, तुम ही से दुख टलता है ॥
 जगदाधार ! सहाय न कोई हमे देख पड़ता जग मे ।
 सब दुख देते निष्ठुर होकर हम दीनो, को पग पग में ॥
 कोई धन के लालच से प्रभु, कोई सुख के पाने को ।
 करता है संहार हमारा कोई धर्म कमाने को ॥
 पर्व दिवस जब आते, तब भी करुणा तनिक न लाते हैं ।
 करें वेधड़क धड़ से सिर, हा ! हम पर छुरी चलाते हैं ॥
 दुष्ट आपका भय भी मनमे लाते नहीं, कुयुक्ति बता—
 हिंसा को यो धर्म बताते, फैलाते ‘पाखण्डमता’ ॥”
 सुन कर विनय वीर प्रभु बोले—“सुनो, न शंका जरा करो ।
 संतों को सौंपे जाता हूं तुमको, धीरज हृदय धरो ॥
 श्रावक, साक्षी, संत सुजन सब रक्षा करें तुम्हारी खूब ।
 जो साधु हो हिंसा करता, वह नरको मे जाता डूब ॥
 धर्म-बहाना जो लवार कर साधु नाम डुबाता है ।
 अन्त समय वह मर कर निश्चय घोर नरक मे जाता है ॥”
 सुन कर वीर प्रभु की वाणी दीन काय खट हो निर्भय ।
 बोले—“प्रभु, अवतार तुम्हारा धन्य, तुम्हारी होवे जय ॥”



(लेखक—श्रीयुत बाबू मोतीलाल जी जैन, एन० ए०)

भारतवर्ष के प्राचीन राजाओं में सम्राट् अशोक वर्धन का आसन सब से ऊँचा है। वह बड़ा प्रतापशाली राजा था और भारतवर्ष के बहुत बड़े भाग पर राज्य करता था। उत्तर-पश्चिम में उसका राज्य कंधार तक फैला हुआ था। वह मौर्य वंशीय महाराजा चन्द्रगुप्त का पोता और बिन्दुसार का लड़का था। वह आज से दो हजार वर्ष पहले राज करता था। उसकी राजधानी पाटलिपुत्र थी। आजकल पाटलिपुत्र के स्थान में पटना नगर बसा हुआ है।

ईसा से २७३ वर्ष पहले अशोक को राजगद्दी मिली और फिर चार वर्ष बाद उसका राजाभिषेक हुआ। कहा जाता है कि पहले अशोक का स्वभाव बड़ा कठोर था और उसे आखेट का बड़ा शौक था, परन्तु एक घटना ऐसी हुई जिससे उसका हृदय बड़ा कोमल हो गया। राजाभिषेक के आठ वर्ष पश्चात् उसने कलिंग देश पर चढ़ाई की। यह देश गोदावरी और महानदी के बीच में है और आजकल इसे उड़ीसा कहते हैं। जब अशोक राजसिंहासन पर बैठा था तब यह देश स्वांत्र था। युद्ध में अशोक की जीत हुई और उसने कलिंग देश पर अपना अधिकार जमा लिया। कलिंग देश वाले जी तोड़ कर लड़े परन्तु वे हार गये। अशोक की सेना कलिंग देश वालों की सेना से बहुत बड़ी चढ़ी थी। इस युद्ध में डेढ़ लाख मनुष्य क़ैद हुए, एक लाख मारे गये। इस हत्याकाण्ड को देख कर अशोक के हृदय में बड़ी चोट लगी। उसने दयामयी बौद्ध धर्म को ग्रहण कर लिया और उसके प्रचार का बीड़ा उठया। उसने फिर कभी किसी से युद्ध न किया।

भारतवर्ष के भिन्न भिन्न प्रान्तों में अशोक ने बौद्ध धर्म का प्रचार करना आरंभ कर दिया । धीरे धीरे सारे देश में बौद्ध धर्म की चर्चा फैल गई । अशोक ने चट्टानों और पाषाण-स्थम्भों पर स्थान स्थान पर अपने आदेश खुदवा दिये । इन आदेशों में यह शिक्षा की थी कि जीव-हिंसा न करो, बड़ों की आज्ञा मानों और अपनी सत्तान तथा मित्रों से प्रेम करो । इनमें से कितने ही आदेश अब तक मौजूद हैं । ये लेख नैपाल की तराई से लेकर मैसूर राज्य तक मिलते हैं । इसमें सिद्ध होता है कि अशोक का राज्य दक्षिणमें मैसूर तक फैला हुआ था । अशोक ने स्वयं मांस खाना और शिकार खेलना बन्द कर दिया और अपने राज्य में यह आज्ञा कर दी कि यज्ञ के लिए पशुओं का बलिदान न किया जाय । धीरे धीरे उसने अपने राज्य में सब प्रकार की जीव हिंसा बन्द कर दी । यह जानने के लिये कि उसकी आज्ञाओं का पालन होता है या नहीं, उसने बहुत से निरीक्षक नियुक्त कर दिये । उसने भारतवर्ष में ही बौद्ध धर्म का प्रचार न किया किन्तु देशान्तरे में भी धर्मोपदेशक भेजे । ये उपदेशक लंका, सीरिया, मैसेडोनिया, मिस्र, और यूनान तक पहुँचे । लंका को जो उपदेशक मण्डली गई थी उसका नेता महेन्द्र था । कुछ लोग कहते हैं कि महेन्द्र अशोक का पुत्र था परन्तु कोई कोई उसे अशोक का भाई बतलाते हैं । कहा जाता है कि महेन्द्र के साथ उसकी भगिनी सघमित्रा भी बहुत सी साधवियों को साथ लेकर लंका गई थी । लंका के राजा ने महेन्द्र का बड़ा आदर किया और वहाँ पर बौद्ध धर्म का खूब प्रचार हुआ । लंका से ही बौद्ध धर्म चीन और जापान तक फैल गया । अशोक ने पाटलिपुत्र में बौद्ध धर्म की एक बहुत बड़ी सभा की जिसमें बौद्ध मत के उपदेशों को पुस्तकों के रूप में संग्रह किया गया ।

अशोक का बहुत सा समय तीर्थों की यात्रा करने में व्यतीत होता था । उसको बौद्धमत से इतना प्रेम था कि वह स्वयं बौद्ध साधु बन गया, परन्तु वह राज्य का काम काज भी करता रहा । यात्रियों के आरामके लिये उसने सड़कोंके किनारे छायादार वृक्ष लगवा दिये और कितने

ही कुर्वें खुदवादिये । उसने स्थान स्थान पर धर्मशालाये स्थापित करदी । उसकी आज्ञा से अनेक औषधालय खोले गये और औषधियों की प्राप्ति के लिए जड़ी बूटियों की पैदावार का प्रबन्ध किया गया । उसने अपनी प्रजा के सुख के लिए कोई बात उठा न रखी । वह दीनो की प्रार्थना सुननेके लिये सदा तैयार रहता था और राज्यके सब कामो की देख भाल स्वयं करता था ।

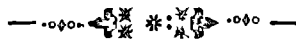
भारतवर्ष मे सब से प्राचीन पत्थर की इमारतें जो मिलती हैं वे अशोक की ही बनवाई हुई है । बौद्ध साधुओं के लिए अशोक ने सैंकड़ो मठ बनवाये । नैपाल की तराई मे उसन ललित पाटन नामक एक नगर बसया जो अब तक विद्यमान है । इस नगर की कई इमारतो पर अशोक का नाम खुदा हुआ है । अशोक की बनवाई हुई इमारतो में सब से विचित्र इमारो स्तूप हैं । भूपाल की रियासत मे साँची के पास अशोक के बनवाये हुए कई स्तूप अब भी मौजूद है । ये स्तूप ऊँचे चबूतरों पर छतरी के आकार के बने हुए है । इनके चारो ओर पत्थर की शिलाओं के घेरे बने है और इन घेरो मे बीच बीच मे बड़े सुंदर तोरण अर्थात् द्वार बने हुए हैं । ये स्तूप महात्मा गौतम बुद्ध अथवा अन्य महात्माओं की हड्डियो को सुरक्षित रखने के लिए, अथवा बौद्ध मत संबन्धी किसी बड़ी घटना की यादगार मे बनाये जाते थे । बौद्ध लोग इनकी पूजा किया करते थे । ये स्तूप भारत के प्राचीन कला कौशल के स्मारक है । अशोक की बनवाई हुई कई इमारतें पृथ्वी मे गड़ी हुई मिली हैं । पाटलिपुत्र मे अशोक का एक बहुत विशाल और सुन्दर महल था । अशोक के पीछे बहुत काल तक यह महल विद्यमान था । परंतु गङ्गा नदी मे एक बार ऐसी बाढ़ आई कि यह महल पानी मे डूब गया और इसके नीचे का भाग रेत से भर गया । कुछ समय पश्चात् इस महल के बचे हुए भाग मे आग लग गई, जिसका परिणाम यह हुआ कि संपूर्ण महल भूमि मे दबगया । इधर कुछ वर्षोंसे लोगो को इस महल के खोजने की उत्कंठा पैदा हुई ।

सन् १९१३ ई० में हमारी सरकार ने पाटलिपुत्र में खुदाई का काम शुरू किया । खुदाई होने पर इस महल के बहुत से अंश निकले और इसके विषय में कितनी ही नई बातें मालूम हुई ।

अशोक के पाषाण-स्तम्भ भी बहुत सुंदर बने हुए हैं । उनसे केवल अशोक के आदेशों का ही पता नहीं लगता किन्तु उस समय की कारीगरी का भी हाल मालूम होना है । अब तक लगभग तीस स्तम्भों का पता लगा है । इनमें से दो स्तम्भ मुजफ्फरपुर और चम्पारन के जिलों में हैं और एक इलाहाबाद में है । मुजफ्फरपुर के जिले में जो स्तम्भ है वह धरती से ४४ फीट ऊँचा है । उसकी पूरी लम्बाई ५० फीट है और वह ताल में १४० मन है । देहली के पास अशोक का एक स्तम्भ है । यह स्तम्भ पहले अम्बाले के पास था, परन्तु मुलतान फीरोजशाह की आज्ञा से यह स्तम्भ वहाँ से १२० मील की दूरी पर देहली में लाया गया । यह काम सचमुच बड़े परिश्रम और चतुर्गई के साथ किया गया होगा, क्योंकि इनमें भारी पदार्थ को इतनी दूरी तक ज्यों का त्यों लाना कोई सहज काम नहीं है । कहा जाता है कि पहिले इस स्तम्भ को रूई और कपड़ों में लपेट कर बहुत धीरे-२ धरती पर गिराया गया । फिर इसको एक भिरे से दूसरे सिरे तक चारों ओर से नरसलों और मुलायम चमड़ के टुकड़ों में लपेट दिया गया । इसके पश्चात् ८४०० मनुष्यों ने इसे खींच कर एक गाड़ी पर चढ़ाया जिसमें ४२ पहिए लगे हुए थे । मार्ग में यमुना नदी पड़ती थी । वहाँ पर इस स्तम्भ को नाव में रखकर नदी के पार किया गया । फिर देहली में बड़े परिश्रम से इस स्तम्भ को धरती से सीधा खड़ा किया गया ।

अशोक प्रतिवर्ष अपनी राजधानी में विद्वानों की एक सभा करता था और गुणवान् मनुष्यों को उचित पुरस्कार भी देता था । यद्यपि वह बौद्धधर्म का बड़ा पक्षपाती था तथापि वह दूसरों मतवालों का भी आदर करता था और उनको दान देता था वह उन पर

कभी अयाचार न करता था । उसके आदेश भी बड़े उदार थे । अशोक ४० वर्ष तक शान्ति पूर्वक राज्य करके ईसवी सन् के २३२ वर्ष पहले परलोक सिधारा । उसके शासन-काल में प्रजा बड़े सुख से रही ।



विना सम्यक्त्वं मिथ्याऽनुष्ठानम् ।

(लेखक—शतावधानी प० जैनमुनि श्री० रत्नचन्द्रजी ।)



हमहमिकया क्रियाडम्बरेण महत्त्वाभिमानिनां विद्याडम्बरेण परिणतं मन्यानां च केषाञ्चिदिदानीतन्मुनीनां पस्पराक्षेपकारिणी दुष्प्रवृत्ति दृष्ट्वा जायमानं विपादं लेखद्वारा प्रकटयितुं नासीन्मन्मनसि मनोरथ-लेश आगमकोप कार्यं प्रवृत्तत्वेनावकाशाभावात्तथापि श्रीमन्माधवमुनिप्रेरितो जैन-पथ-प्रदर्शक मासिकाधिपति प्रचुराग्रह समुत्तेजित सम्यक्त्वानुष्ठानविषये सक्षेपेण किञ्चिल्लिखितुं प्रवृत्तोऽस्मि—

नादंसंख्यिस्स नाणं, नाणेण विणा न होंतिचरणगुणा ॥

अगुणिस्स नत्थिमोक्खो, नत्थि अमुक्खस्स निव्वाणं ॥

उत्तरा० अ० २८

कीदृश मुच्चरहस्यमत्र निदर्शितं श्रीमहावीरेण ॥ अदर्शनिन — दर्शनरहितस्य न ज्ञानं—सम्यग्ज्ञानं । तथा ज्ञानेन विना चरण-चारित्र-गुणा न भवन्ति पिण्डविशुद्ध्यादि चरणगुणरहितस्य च नास्ति मोक्ष । विनाच मोक्षं—निखिल कर्मक्षयात्मक नास्ति निर्वाणं—सर्वथा दुःखक्षय । दुःखोत्पादक कर्मसमूहक्षयात्मक मोक्षसम्पत्त्यर्थं चरणगुण स्यावश्यकता ।

चरणगुण सम्पादनार्थं ज्ञानस्य सम्यग्ज्ञानस्यावश्यकत्वं सम्यग्ज्ञान समु-
त्पत्त्यर्थञ्च दर्शनस्य—सम्यग्दृष्टे रावश्यकताऽत्र निर्दिष्टा एवमेव—

नन्वि चरित्तं समत्त, विहूणं दंसणे उभयव्वं ।

सम्पत्त चरित्ताइं, जुगव्वं पुव्वं च सम्पत्तं ॥

उत्तरा० अध्या० २८—२६

अत्रापि सम्यक्त्वचारित्रयोर्युगपद्भावं चारित्रस्य सम्यक्त्व पूर्वकत्वं
वा प्रतिपादयता सम्यक्त्वस्यैव मुख्यतया निरूपिता कुतः सम्यक्त्व विना
चारित्रस्य नास्ति च प्रतिपादनात् चारित्रासहकृतमपि दर्शनं भवति किन्तु
दर्शनासहकृतं चारित्रं तु नास्त्येव चारित्रसद्भावे नियमतया सम्यक्त्वम-
पेक्षितं तथा च मिद्ध सकलानुष्ठानस्य सम्यक्त्व पूर्वकत्वं एव साफ-यम-
न्यथातु निष्फल तत्सर्वम् ।

ननु नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तन्नो तद्वा ।

एस मग्गुत्ति पणत्तो, निण्हिं वरदंसिदिं ॥

उत्तरा० अध्या० २८—२

सम्यग्ज्ञान सम्यग्दर्शनं सम्यक् चारित्राणि मोक्षमार्ग इत्यादि
सूत्रानुसारेण ज्ञानदर्शनं चारित्रं तपसामेतच्चतूर्णां मथवा सम्यग्ज्ञानादी-
ना त्रयाणां समानतया मोक्षमार्गत्वं समर्थितं तत्कथं चारित्रापेक्षया
दर्शनस्य वा ज्ञानस्य विशेषताऽऽपाद्यते सत्य—दृश्यतेऽत्र यद्यपि समानता
तथापि गणनायाः प्रथमं ज्ञानदर्शनयोर्निर्देशः पश्चाच्च चारित्रस्य निर्देशः
कृतस्तच्च चारित्रापेक्षया ज्ञानदर्शनयोः प्राथम्येन प्राधान्यं प्रकटीकृतम् ।

नन्वेवं दर्शनादपि ज्ञानस्य प्राधान्यं स्याज्ज्ञानस्य प्रथम निर्दे-
शादिति चेदस्तु तयोर्युगपद्भावात् ज्ञानं विना न दर्शनं दर्शनं विना च न
ज्ञानं द्वयोः सहचारिभावात् ।

सम्यक्त्वमपि व्यवहारनिश्चय भेदेन द्विविधं तत्रात्मज्ञानं विना
जीवादितत्त्वार्थं श्रद्धान् व्यवहारसम्यक्त्वं स्वानुभवसहितं तन्निश्चयसम्य-

क्त्व यदुक्त-शुद्धबुद्धस्य चिद्रूपा-दन्यस्याभिमुखी रुचिः । व्यवहारेण सम्यक्त्व निश्चयेन चिदात्मने ॥ १ ॥

तथा च निश्चय सम्यक्त्वमात्मज्ञान नियतमेवातो ज्ञानस्य प्राधान्येऽपि न क्षतिः ।

तपोपि ज्ञानादि सहकृतमेव सफल मन्यथात्व किञ्चित्करमेव तदुक्त मुत्तराध्ययन नवमाध्ययने ।

मामे मासे उजोवाते, कुसग्गेणं तु भुंजए ।

न सो सुअक्खाय धम्मस्स, कलअग्घइसोलसि ॥ ४४ ॥

कुशाग्रमात्रं पारणे भुञ्जानस्य तपस्विनो यदिवालभावां नापगत-
स्यात्तदा भूयोभूय क्रियमाणस्य मासक्षपणादि तपसोऽप्यल्पफलत्वं प्रकट-
यता नमिराजपिण्डा सम्यक्वरयैव महत्त्वमुपदर्शितम् ।

एव सम्यक्त्वस्य महत्तायां दर्शितायां सत्यामपि चारित्र्यस्य लेशेनापि
न्यूनप्रयोजनकत्वं न स्वीकुर्म यस्माज्जैनशास्त्रे रथचक्रोपमे ज्ञानक्रिये
प्रतिपादिते एकेन चक्रेण यथा रथो न शक्नोति गन्तुं तथा ज्ञानं विना
क्रियायां क्रिया विना ज्ञानेन वा न मोक्षसम्पत्तिः ज्ञान विना क्रियावान-
न्धतुल्यः । क्रियां विना च ज्ञानवान् पशुमदृशः परस्पर साहाय्यं विना-
ऽन्धः पङ्गुश्चाशक्तौघातं गन्तुः । परस्पर साहाय्ये तु शक्नुत एवतदुक्तं—

संजोगसिद्धी सफला हवन्ति,

नहु एगचक्रेण रहो पयाइ ।

अंधोय पंगू य वणे समिच्चा,

ते संपउत्ता नयरं पविट्ठा ॥ १ ॥

अन्यशास्त्रे हारीतेप्युक्तं

उभाभ्यामपि पक्षाभ्यां, यथा खे पक्षिणां गतिः ।

तथैव ज्ञानकर्मभ्यां, प्राप्यते ब्रह्म शाश्वतम् ॥ २ ॥

श्रुतावपि-सत्येन लभ्य तपसा ह्यपञ्चात्मा सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्म-
चर्येण च इति ।

इत्थ भूतायां वस्तुस्थितौ सत्यामपि साम्प्रत मम्माकं मुनिवराणां
प्रवृत्तिः किञ्चिद्विलक्षणा दृश्यते केचिच्च विद्याडम्बरेण पाण्डित्यं प्रकटयति

केचिच्च बाह्यक्रियाडम्बरेण वैराग्यं वितन्वते सूक्ष्मेक्षिकया यदि
दृश्यते तदैकत्र मिथ्याभिमानोऽन्यत्र च दम्भोऽनिकृतिर्वा भवतो दृष्टिगोचरौ
शम सवेगनिर्वेदादिका सम्यक्त्वगुणा भावचरणगुणा श्रोत्रभयत्राऽपि क्षीणा-
प्रतीयन्ते सर्वकुशवीज भूत राग द्वे पापहारक आत्मोद्धारकारक आदर्श-
भूत साम्यभावाख्यगुणस्तु इतस्ततो विशोध्यमानोऽपि नायाति कचिन्नयन-
मार्गं । किमायाति तर्हि नयनपथं ? स्वश्लाघा, परनिन्दा । स्वम्य नि-
र्दोषत्वख्यापनं परत्र दोषारोपणम्, स्वकीय गौरव परकीय लाघवम्,

एकदेशि सम्प्रदायाभिमान सर्वदेश्य खण्डा विच्छिन्नैक जिन-
मोक्षपिज्ञा, परस्परवैरवृद्धि कुट्टाकुट्टि, क्रियद्बुद्धे नपारयामि वर्त्तमानाप
कुष्ठस्थिति यथावन्निरूपयितुम् ।

साम्प्रतं सर्वान्मुनिवरानेतदेव प्रार्थये यदस्मत्समाजे वैषम्यं
दूरीकृत्य साम्यभाव स्थापयत्य परस्परैक्यबलसरक्षणाय च समाजाऽधो-
गति निवारणाय च भवत सज्जा कटिबद्धा ॥

यदिच्छथ स्वश्रेयं कुरुत सम्यग्ज्ञानसम्यग्दर्शन सम्यक्चारि-
त्राणा श्वाराधनां कारयत च स्वानुयायिनाताम् ।

—::०::—

❀ धर्म का मर्म । ❀

(लेखक—श्रीयुग 'सनेही')

सत्य, अहिंसा, दया, धर्म के मर्म यही हैं ।
भव सागर में तराफि रूप सत्कर्म यही हैं ॥
ज्ञानी मन सारथी बने जो नर तनु रथ में ।
बाधा कोई पड़ न सके तो जीवन पथ में ॥

—::०::—

❀ जाति-अनुराग । ❀

[लेखक—श्री० कन्हैयालाल जी, जैन (कस्तूर)]

जगत के जितने भी है कर्म—
 सभी में हो स्वजाति-अनुराग ।
 जाति के लिए जोकि हित कर्म—
 नहीं हैं, कर दो उतका त्याग ॥
 न है जितमे स्वजाति अनुराग,
 न है उनके जीवन मे सार ।
 वृथा वे बढ़ा रहे है पड़े,
 स्वजाती जन्म-भूमि का भार ॥
 प्रेममय करे मधुर-भक्तार,
 हमारी हृद् तन्त्री का तार ।
 बहे जातीय-स्नेह-रस-धार,
 बहे उसमे सारे नर नार ॥
 भुलाने कभी न निज कर्तव्य,
 जाति के प्रति जितने हो-आँख ।
 जाति-उन्नति हित करके कर्म,
 वनावें जाति अखिल-सिरमौर ॥
 कहे क्या ? क्या कहने को पास ?
 शेष है रहा-हृदय-उच्छ्वास ।
 जहां था विस्तृत पूर्ण-विकास ।
 वहां यो अन्धकार का वास ?
 कार्य कर्ताओ को धिक्कारल,
 यहां पर बिछे हुए है जाल ।
 जने कब हो पावेगा हा,
 उन्नत इस जैन जाति का भाल ॥

जैन पथ प्रदर्शक



जैन कवि वाबू कन्हैयालालजी (कस्तला)

Printed by R. G. Bhusal & Co., A-111

जैन पथ प्रदर्शक

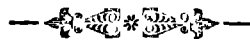


मुंशी मुहम्मद रफ़ातुल्लाखां

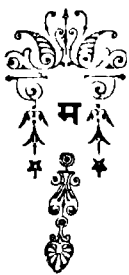
सूबा साहब जिला मन्दसौर

(राज्य गवालिअर)

× × × ×
 प्रभो ! तुम दीन जनो के,
 कहलाते हो सबे दीनानाथ ।
 उरो मे जाति-प्रेम क्या नही,
 भरोगे । नही गहोगे हाथ ?



(लेखक—श्रीगुरु कृष्णलाल वर्मा 'प्रेम' बम्बर)



मुन्य के अत.करण मे घृणा, क्रोध, अभिमान, ईर्ष्या आदि अनेक वृत्तियां है । प्रेम भी उन्हीं मे की एक है । प्रेम अत करण की उस वृत्ति का नाम है जो मनुय जीवन को विशाल, सकुचि विचारों को विस्तृत हार्दिक संकीर्णता को असीम और दु खी चित्त को प्रसन्न बनाती है । जिसके उदित होने पर जीव पर को अपना र म म्ता है । दूसरे को दु खी देखकर उसको सुख पहुंचाने के लिये मथता है और अपने पौद्गलिक शरीर को सकट मे डालकर भी प्राणी को विपत्तियों के मुख से निकालने का प्रयत्न करता है ।

यह आन्तरिक वृत्ति जिसको हम प्रेम के नाम से पहिचानते है कही से प्राप्त नहीं करनी पड़ती है । यह पहिले ही से प्रत्येक आत्मा मे मौजूद है । तो भी इतना जरूर है कि उस वृत्तिको-प्रेमके-व्यवहारमे लाने के लिये अन्य पदार्थों की आवश्यकता पड़ती है । जिन पदार्थोंको हम प्रेम वृत्ति का उपयोग करने के काम मे लाते है उन्ही पदार्थों को प्रेम प्राप्ति के साधन बना सकते है ।

एक उदाहरण से यह बात विशेष स्पष्ट होजायगी । एक पुरुष के दो स्त्रियाँ थी । उसकी बड़ी पत्नी के पुत्र हुआ । पुत्र जन्म के दो तीन महीने बाद ही पुरुष मर गया । पुत्र की माता भोली थी दूसरी चालाक थी । स्त्री ने पुत्र की माता को मीठी बातों से भुलाकर लड़के को अपने पास रखलिया ।

एक बरस के बाद जायदाद के लिये झगड़ा पड़ा, फैसला हुआ कि जायदाद लड़के को मिले और दोनों स्त्रियों को जायदाद में से राटी कपड़ा भिला करे । लड़का जब तक बालिग न हो जाय तब तक जायदाद पर उसकी माता का अधिकार रहे ।

जायदाद के बजाय अब लड़के का झगड़ा प्रारम्भ हुआ । छोटी स्त्री कहती थी कि लड़का मेरा है और बड़ी कहती थी कि लड़का मेरा है । अदालत में मुकदमा पटुचा दोनों ओर से गवाहियां पेश हुई । मगर पलड़ा छोटी का ही भारी रहा । हाकिम बड़ा बुद्धिमान था । मगर इस मामले को हल करने में उसकी भी बुद्धि चकरा गई ।

कचहरी से शाम को जब वह अपने घर गया तब उसका चेहरा उदास था । उसकी पत्नी ने उदासी का कारण पूछा उसने मुकदमे का हार सुनाया । उसकी पत्नी ने कहा “याप कुछ चिन्ता न न करे । मैं इसका फैसला करूँगी” ।

दूसरे दिन सबेरे ही हाकिम की स्त्री ने दोनों स्त्रियों को लड़के को लेकर बुलया । जब स्त्रियां आईं तब उनसे हाकिम की पत्नी ने लड़के को ले लिया और अन्दर जाकर वह एक कपड़े में बड़ी सी मछली जो उसने पहले ही से मगवा कर रक्की थी-धाध लाई । कपड़े में लपेटी हुई मछली उसने अपने नौकरको दी और कहा “इस लड़केको लेजाकर पानी में फेंक आ ।” स्त्रियां हा । हा । करती हुई उस नौकरके पीछे चली । हाकिमका मकान दरिया किनारे था, इसलिए वह और उसकी स्त्री क्या होता है सो खिडकी में से देखने लगे । नौकर ने मछली

को पानी में फेंक दिया । छोटी स्त्री खड़ी हुई बनावटी रुदन करती रही, परन्तु बड़ी स्त्री जो लड़के की असली माता थी उसके साथ ही दरिया में फाँद पड़ी और कपड़े में लपेटी हुई मछली को पकड़ लाई । मगर वह तैरना नहीं जानती थी इसलिए डुबकियाँ खाने लगी । हाकिम की स्त्री ने पहिले से ही आदमी नियत कर रखे थे वे उस स्त्री को निकाल लाये ।

स्त्री जब वापिस आई तब हाकिम की स्त्री ने लड़का उसके सिपुर्द किया । छोटी स्त्री अपना सा मुह लेकर चली गई । बड़ी स्त्री ने आशीर्वाद देते हुए अपने घरका रास्ता लिया । हाकिम ने अपनी पत्नी की बुद्धिमत्ता की भूरि भूरि प्रशंसा की ।

इस उदाहरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि माता (बड़ी स्त्री) अपना भूलकर-अपने जीवन की भी परवाह न कर लड़के को बचाने के लिए दरिया में कूद पड़ी थी । इसका कारण उसका प्रेम था, उसकी वह वृत्ति थी जो दूसरे के जीवन की रक्षा के लिए अपना जीवन धोखे में डालती है और साधन था लड़का जिसके कारण वह अपनी प्रेमवृत्ति को चरितार्थ कर सकी थी ।

प्रेम सूर्य के समान उज्ज्वल प्रकाश है जो कभी अन्धकार को नहीं देखता है, उसके प्रकाश में सब चमकते ही रहते हैं । प्रेम निराश बीमारों का वैद्य है, लूले लँगड़ों का सहारा है, बेनातियों का नाती है, बे साथियों का साथी है, अधों की आँख है, अच्छे बुरे, खोटे, खरे सबको एक दृष्टि से देखने वाला है ।

चौपाटी पर जाने वाले चौराते पर कोई लड़की एक चोट खाये हुए लड़के को अपनी बगल में उठाए लेजा रही थी । एक आदमी ने लड़की से कहा.—“लड़का भारी है, इसलिए इसे उठा कर लेजाने में तुम्हें तकलीफ पड़ती है, बेटी ! ला मैं लड़के को पहुँचा दूँ ।” लड़की ने उत्तर दिया “नहीं साहिब ! लड़के में ज्यादा बोझा कहाँ है ? यह तो मेरा भाई है ।”

ओह ! प्रेम की कैसी अद्भुत शक्ति है ! जो भारी बोभे को हल्का बना देता है ।

एक प्रसिद्ध समाचार पत्र में एक नोटिस प्रकाशित हुआ था उसमें लिखा था “यदि तुम प्रत्येक वैद्य, हकीम या डाक्टर की दवा करके भी अपना रोग न मिटा सके हों तो मेरे पास आओ मैं तुम्हें आराम करूँगा” ।

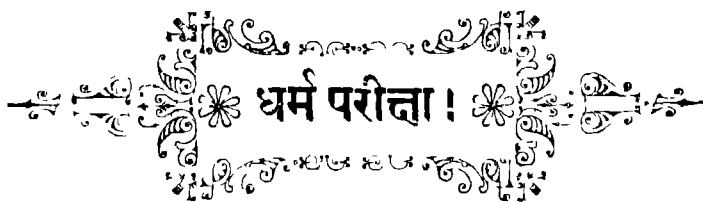
इस नोटिस को देने वाला सभव हो कि एक ऊँट वैद्य हो मगर यह नोटिस ऐसा है जो निराश लोगों के अतःकरण को अपनी ओर खींच लेना है, उन्हें आश्वासन देता है । इसी भाँति प्रेम पुकार कर कहता है “कठोर परिश्रम और दरिद्रता के भारी बोभे से लड़े हुए लोगों ! मेरे पास आओ मैं तुम्हें शान्ति दूँगा । जब तुम्हें किसी भी बात से आराम सन्तोष या प्रसन्नता न मिले, जब तुम्हारे मित्र तुमसे मुँह फेरले, जब तुम्हारा व्यापार नष्ट हो जाय, जब तुमसे कोई भयंकर भूल हो गई हो और उसके कारण समाज ने तुम्हें अपने से जुदा कर दिया हो, जब प्रत्येक मनुष्य तुम्हारी भर्त्सना करता हो, जब सब तरफ के दवाजे तुम्हारे लिए बन्द हो गये हो उस समय मैं विपत्ति के शिकारी मनुष्यो ! मेरे पास आओ ! मैं तुम्हें शान्ति दूँगा, आराम पहुँचाऊँगा ।

यह प्रेम ही है जिसके कारण एक कुटुम्ब के लोग परस्पर की हितचिन्ता करते हैं, जिससे जाति का संगठन होता है और जिससे मनुष्य देश-प्रेमी बनते हैं । यदि यह दायरा और बढ़ा दिया जाय, यदि अन्तःकरणस्थ प्रेमवृत्ति को ईर्ष्या, क्रोध अपसवार्थादि वृत्तियों पर अधिकार कर लेने दिया जाय, यदि वच्चों को कुटुम्ब प्रेम, जाति प्रेम और देश प्रेम की शिक्षा देने के साथ ही विश्व प्रेम की शिक्षा दी जाय उन्हें यह सिखाया जाय कि संसार मेरा देश है तो संसार में हाने वाली खून खराबी क्षण मात्र में बन्द हो जाय और चहुँ ओर शान्ति ही शान्ति दिखाई देने लगे ।

भगवान् महावीर ने ससार को यही सिखाया था । क्या आज मेरे जैन-बन्धु अपने पूज्य प्रभु का फिर से अनुसरण करके रात दिन बढ़ते हुए पारम्परिक कलह को मिटायेंगे ?

जिस जैनसंघ में यह शक्ति थी कि, अपने अंदर बाहिर से आये हुए कलह-प्रिय मनुष्य को भी, अपने प्रेम के प्रभाव से प्रेम-मय बना देता था, जिसके लिये यह मशहूर है कि जैनमात्र सब एक माला के मणिके हैं, जिसके लिए यह कहा जाता है कि वह एक शरीर है और उसकी भिन्न २ व्यक्तियाँ उसके अवयव हैं । उसी जैन संघ की आज कैसी दशा है ? वह कई भागों में विभक्त हो चुका है और उन विभक्त भागों में भी मेल नहीं है । स्थानकवासी स्थानकवासी आपस में भगड़ते हैं, मूर्त्तिपूजक मूर्त्तिपूजकों की निंदा करते हैं; दिगम्बर दिगम्बर आपस में बड़ी बुरी तरह से पेश आते हैं । किमलिङ्ग ? केवल इसलिए कि वे आज भगवान् महावीर को भूल गये हैं, उनके पवित्र आदेश को भूल गये हैं, उस जैतवरूपी प्रेम के धागे में बाहिर निकल पड़े हैं, प्रेम का सुनहरी तार—जिनमें ये मोतियों की तरह पिरोए हुए थे—टूट गया है । नहीं नहीं भगवान् के आदेश के सामने इन्होंने बलवा जगाया है । इस बलवे को शान्त होना ही चाहिए; सबको फिर से प्रेम के तार में अपने आपको पिरोना ही चाहिए और बिखर कर नष्ट होने के करीब पहुँचे हुए इस जैन समाज को पुनः दृढ़ बना देना ही चाहिए ।





(लेखक—श्रीगुन “त्रिशूल”)

अग देश मे परम रम्य चम्पा नगरी थी ,
भरी पुरी भरपूर लता सी हरी भरी थी ।
पूर्ण भद्र था चैत्य चारु ईशान दिशा मे ,
थी सर्वोपम छटा दिवस मे और निशा मे ।

न्यायी नृप जित शत्रु का उस अञ्चल में राज्य था ।
पथ अधर्म अन्याय का निन्दनीय था त्याज्य था ॥१॥

यहाँ चारमौ वर्ष प्रथम विक्रम सम्बत से ,
कामदेव जी नाम एक सेठी रहते थे ।
लज्जित होता था कुवेर वैभव से उनके ;
भद्रा वाई पाद पद्म पर अलिनी बनके ।

पातिव्रत की, प्रेम की मूर्ति पुण्य अवतार थी ।
गोशाला में पल रही गौवें साठ हजार थीं ॥२॥

करके दर्शन महावीर जी के सुकर्म से ,
बारह व्रत ले लगन लगाई गृही धर्म से ।
अवगत होकर आत्म तत्व के गूढ़ मर्म से ,
सरुन नर्म से दवे न भिक्के सद्-गर्म से ।

आत्म-तत्व-चिन्तन में निरत ज्ञान के गेह थे ।
सेठी जी गार्हस्थ में बने स-देह विदेह थे ॥३॥

थी अखण्ड अधरात प्रकृति निस्तब्ध हुई थी ;
ध्यान मग्न थे शान्ति रूप बैठे सेठी जी ।

वस्त्र न थे कुछ सिवा वस्त्रिका धोती दुपटी ;
 इतने तो सम्पत्तिवान पर परम विरागी ।
 जिनके मन में मुक्ति का भरा हुआ अनुराग है ।
 उन भीरों को जगत में कठिन न कोई त्याग है ॥४॥

इतने ही मे दिया दैत्य दुर्दान्त दिखाई ;
 थी कुदेव ने मूर्ति घोर बीभत्स बनाई ।
 महिषासुर का बाप कहे या यम का भाई ;
 महा अधर्मी, पाप पुज, अनयी अन्यायी ।
 देह पर्वताकार थी मुख श्रवणादिक गार थे ।
 भूषण थे मूपक, नकुल, साँप गले का द्वार थे ॥५॥

निज खलता का खूब खजाना उसने खोला ;
 आया था वह देव बदल कर अपना चोला ।
 सेठी जी का चित्त किन्तु कुछ डिगा न डोला ;
 अट्टहास कर क्रोध पूर्ण बाणी यो—बोला ।
 अरे अभागे ! मन्दमति इस मत से मुंह मोड़ तू ।
 पर न धर्म के फेर में व्रत गृहस्थ का छोड़ तू ॥६॥

हे मरणोन्मुख ! दुष्ट मन्दमति मूढ़ अभागे ;
 धर्म मोक्ष, कामना कुफल है तेरे आगे ।
 पहुंचाता हूं स्वर्ग मौत आई वे मोंगे ;
 मैं कर रहा सचेत भागना है तो भागे ।
 अपने प्राणों का तुझे क्या न तनिक भी प्यार है ।
 तेरे शिर पर नाचती यह तीखी तलवार है ॥७॥

कामदेव रख समझ कि व्रत तेरा टालूंगा ;
 छोड़ूंगा मैं नहीं मूढ़ तुझको खालूंगा ।
 टुकड़े २ देह पलक में कर डालूंगा ;
 तू पालेगा टेक कि मैं निज हठ पालूंगा ।

तुझे मोक्ष की आस है तुझे धर्म जल-धार है ।
प्यासी तेरे लहू की यह असि पानीदार है ॥८॥

सुन कर यह दुर्वाद न सेठी जी कुछ सनके ;
अभय, अशंकित, अनुद्विग्न, अत्रासित बनके ।
डटे स य पर भाव नहीं बदले कुछ सनके ,
गिरिवर कैसे हटे हटाये हुए पवन के ।

निश्चल हृदयों को कभी छल सकते हैं खल नहीं ।
परम प्रबल है सत्य बल इसमें कुछ भी बल नहीं ॥९॥

सेठी जी को मौन देख कर वह झुल्लाया ,
खड्ग तोल कर लगा दिखाने अपनी माया ।
तीन बार तक छोड़ छोड़ राक्षस चिन्लाया
हुआ क्रोध से अन्ध भयङ्कर रूप दिखाया ।

विविध वेदनायें लगा देने अम्बाघात से ।
पर पर्वत विचलित नहीं होते विद्युत पात से ॥१०॥

सत्याग्रह में डटे वीरवत हटे न डोले ,
जी में ठाना यही कि जो होना हो होले ।
थी असह्य वेदना नहीं तौ भी वे बोले ,
खीझा लाख कुटेव फोड़ता रहा फफोले ।

सह डाली पीड़ा विषम सहे घाव तलवार के ।
टले न व्रत से देव तब बाहर आया द्वार के ॥११॥

था वह दुष्ट कुदेव दिव्य बल रखने वाला ;
अबके वह बत गया एक हाथी मतवाला ।
कज्जल गिरि था घोर भयानक काला काला ,
था यह कुहू कुपुत्र या कि था यम का साला ।

सेठी जो के सामने आकर यों कहने लगा ।
मानों अन्धी गुफा से विष प्रवाह बहने लगा ॥१२॥

सेठी आप्रह छोड़ नहीं अब नहीं छोड़ता ,
पकड़ सूंड़ में तुम्हें गगन में हूं भँभोड़ता ।
ऊपर तुम्हें उछाल दौत पर देह तोड़ता ,
क्षण में मसल मरोड़ पैर से शीश फोड़ता ।

जो कहना माना नहीं तो खा गोता जायगा ।
निज शरीर के मोह से यमपुर रोता जायगा ॥१३॥

सेठी जी पी गये वचन विष मौन धारके ;
कोपित और कुदेव हुआ दड़ता निहार के ।
पकड़ सूंड़ में उन्हें दौत पर ला प्रहार के ,
कुचला पैरो तले पटक के दौत मार के ।

पर वे अपनी जान पर धीरज से खेले गये ।
ध्यान न टूटा वेदना बड़ी कड़ी भेले गये ॥१४॥

सहनशीलता देख देव चक्र में आया ,
तजकर धर्म स्थान उसी अवसर में आया ।
सौदा अब की नया देव के सर में आया ,
काल सर्प का रूप धरे फिर घर में आया ।

तीन बार फिर यह कहा अब भी यह व्रत छोड़ तू ।
प्राण छोड़ रे मन्दमति ! या निज सत को छोड़ तू ॥१५॥

ठीक कहा है कभी अस्ल से खता नहीं है,
हुई कभी कम अस्ल दुष्ट से वफा नहीं है ।
लाख खाक में मिला स्वर्ण-क्षण मिटा नहीं है,
लोहा कच्चा रहा अगर वह तपा नहीं है ।

सेठी जी सत्याग्रही परम तपस्वी धीर थे ।
बोले कुछ भी वे नहीं कर्म कुशल थे वीर थे ॥१६॥

हा ! हा ! अब तो काल सर्प ने फन फैलाया,
लिपट गले में गया दंश उर में पहुंचाया ।

तेवर मे बल किन्तु न सेठी जी के आया ,
छोड़े थे वह देह गेह की बिलकुल माया ।
ध्यान घोर वेदना में क्यों उनका होने लगा ।
धर्मवान जीने हुए क्यों स्वधर्म खोने लगा ॥१७॥

सहनशीलता देख देव गद्गद् हो आया;
कोई चली न चाल नम्र दुर्मद हों आया ।
रह न गया अभिमान हृदय मे रद हो आया;
अभी असद था देव पलक मे सद हो आया ।
कोई मंत्र चला नहीं उच्चाटन मागण किया ।
तब उसने तज दुष्टता दिव्य रूप धारण किया ॥१८॥

मुख मण्डल था चन्द्र रत्न क्या तारागण थे,
मस्तक पर मणि मुकुट सकुण्डल सजे श्रवण थे,
तेज पुंज तन अतर्जित मे थमे चरण थे,
किङ्किणि की झंकार शब्द माधुर्य शरण थे ।
अपने कोकिल कण्ठ से सुधा धार सी छोड़ के ।
मधु-मिश्री मिश्रित वचन बोला यों कर जोड़ के ॥१९॥

तेरा जन्म कृतार्थ मुक्त तू धीर धन्य है,
पुण्य परायण भक्त धर्म का तू अनन्य है ।
व्यापा तुझ को नहीं दुःख जो मोह जन्य है;
अहंकार का नाम नहीं जो अहम्मन्य है ।
स्वर्ग लोभ में इन्द्र ने जो गुण तेरे थे कहे—
कामदेव ! वे सकल गुण तुझ में शोभित हो रहे ॥२०॥

क्षमा क्षमा हे क्षमासिन्धु अपराध क्षमा कर;
तेरे पैरों पड़ें धर्म का है तू आकर ।
लोक लोक मे दीप्त रहे तब कीर्ति सुधाकर,
क्षमा दान कर शान्ति मुझे दे अब इतना कर ।

ऐसी शठता अब कभी मुझ से होने की नहीं ।

कसे बिना जँचती कभी कीमत सोने की नहीं ॥२१॥

अपराधो की पोट शीश पर अपने धरली ,

बिनती जितनी बनी मान गत होकर करली ।

क्षमा मांग कर शान्ति हृदय मे अपने भरली ;

पीड़ा उनकी देव शक्ति के बल से हरली ।

परम शान्ति सेठी रहे हुवा विगत अभिमान वह ।

जय जय ध्वनि करता हुवा क्षण में अन्तर्धान वह ॥२२॥

उठे सूर्य के साथ ध्यान सेठी जी करके ,

परमानन्दित हुए वचन सुनकर अनुचर के ।

महावीर भगवान पधारे निकट नगर के ,

पहुँचे उत्सुक यथा वृषित मृग तट सरवरके ।

वर्धमान के दर्श से हो कृतार्थ कुल दीप वे ।

अभिनन्दन कर प्रेम से बैठे चरण समीप वे ॥२३॥

अन्तर्यामी बद्धमान जी दिव्य ज्ञान से ,

जान गये वृत्तान्त बिना बोले जवान से ।

निज शिष्यों को तृप्त किया यो सुधा पान से ,

जानो जी मे धर्म साधु गए अधिक जान से ।

कामदेव ने जिम तरह वारा प्रण पर प्राण है ।

सहो कष्ट व्रत पर रहो तभी धर्म का त्राण है ॥२४॥

यह गृहस्थ तुम साधु बड़ा पद धरने वाले ,

नर, पशु, देव, अदेव कुटिलता करने वाले ।

लाख तुम्हें दे कष्ट न हो तुम डरने वाले ,

हो जाते है मुक्त धर्म पर मरने वाले ।

अन्तर्यामी के वचन भरे हुए यह ज्ञान से ।

सुन कर सब गद्ग गद्ग हुए लगन लगी भगवान से ॥२५॥

सेठी जी कुछ वर्ष और व्रत पालन करके ;
 तज कर नश्वर देह रूप में हुए अमर के ।
 परम प्रतापी तेज पुंज शोभा श्रीधर के ;
 करते हैं सुख भोग स्वर्ग का अब जी भर के ।

पुण्य चीए होगी कभी तब इस जग में आयेंगे ।
 पालन कर ऋषि धर्म फिर बंधन से छुट जायेंगे ॥२६॥

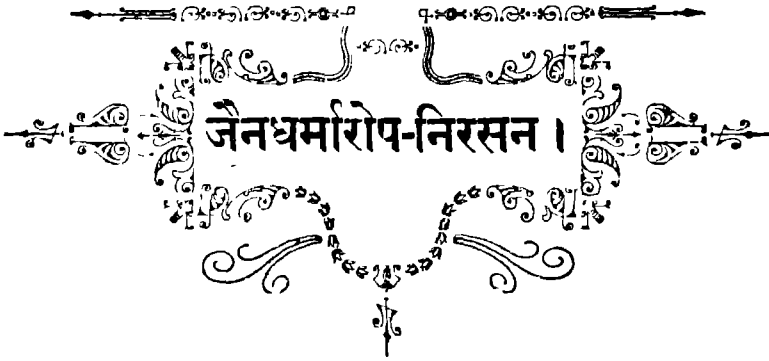
जो सहते हैं कष्ट धर्म पालन करते हैं ,
 होते हैं वे अमर नहीं मारे मरते हैं ।
 फँसे मोह में मूढ़ डूबते हैं तरते हैं ।
 होते हैं वे सफल धीरता जो धरते हैं ।

ऋद्धि सिद्धियां द्वार पर आकर उनके जांचतीं ।
 भुक्ति-मुक्ति सामने आय नवल नटी सी नांचतीं ॥२७॥

कब तक देगा दुष्ट दुःख लो थाह न छोड़ो ;
 बन्धन में हो पड़े मुक्ति की चाह न छोड़ो ।
 चूको प्रियवर ! नहीं धर्म की राह न छोड़ो ,
 सहन करो सब कष्ट मुखो से आह न छोड़ो ।

अन्यायी अन्याय की लिये अगर करवात है ।
 क्षमा वर्म तुम बनालो सत्य तुम्हारी ढाल है ॥२८॥





(लेखक—श्रीगुप्त विरूपाक्ष वडियार, प्रोफेसर संस्कृत कालेज ।)



चीन इतिहास पर ध्यान दिया जाय तो यह अद्भुत बात मालूम होगी कि किसी समय जो पदार्थ उन्नत था वही दिनों के फेर से अवनति के गढ़े में भी गिरा । संसार में गाड़ी के पहिये की लकीर की भांति, सब वस्तुओं की नीची ऊँची दशा सदा से है । क्या राजकीय, क्या धार्मिक, क्या विभव सम्बन्धी और क्या विद्या विषयक, इनमें से कोई भी बात लगातार उन्नति के शिखर पर आरुढ़ नहीं रही । इसमें सन्देह नहीं कि यह दशा बड़ी अद्भुत है और इससे प्रकृति की अगाध शक्ति का कुछ २ आभास मिलता है ।

परमेश्वर यद्यपि एक ही है तथापि उसकी सान्निध्य-प्राप्ति अथवा उसकी बनाई हुई सृष्टि में सुख प्राप्त करने के लिए प्राचीन महा पुरुषों ने अनेक मार्ग ढूँढ़ निकाले हैं । जैन धर्म भी उन्हीं में से एक मार्ग है । आज इसी विषय पर, ऐतिहासिक दृष्टिसे, यहां विचार किया जाता है ।

हजारों वर्ष पहले इस भारतवर्ष में हजारों प्राणियों के मुँह से जिस जिनेन्द्र शब्द के सिवा और शब्द ही न सुना जाता था उसी जैन धर्म के मानने वालों की संख्या इस समय

कुल तेरह लाख है । इससे बढ़कर दैव-दुर्विपाक और क्या हो सकता है ? उस दैव-दुर्विपाक को धिक्कार है ।

मैने 'जैन-धर्म-मीमांसा' शीर्षक अपने पिछले निबन्ध में सिद्ध कर दिया है कि जैन-धर्म वैदिक है और वैदिक-कालीन भी है । उस लेख में सिद्ध किया गया है कि ऐतरेय आदि ग्रन्थों के निर्माणकाल में इस धर्म को मुकुलित अवस्था प्राप्त होगई थी और सर्वत्र हिंसा आदि दुर्न्यायका प्रचार हो गया था । बड़े बड़े विद्वान् कहलाने वाले भी मद्य-मांस आदि दुष्ट आहार को उत्तेजन देने के लिये तैयार होगये थे इस विषय के बहुतेरे वचन पाये जाते हैं । ऐसे दुर्व्याख्यो का उद्घाटन कर दिया जाय तो पढ़ने वाले मनुष्य भी तत्सवर्गी बन जायेंगे, इसलिए मैं उन वाक्यों को उद्धृत करने के समेल में नहीं पड़ता क्योंकि एकवार श्रीरामकृष्ण परमहंस देव के आगे कुछ विद्यार्थी "बाइविल" पढ़ कर कुछ ऐसे वाक्य सुना रहे थे कि—“हे ईश्वर, मैं महा पापी हूँ, उन पापों से तू मेरी रक्षा कर ।” ऐसे वाक्यों को सुनते ही परमहंस देव ने उन विद्यार्थियों से कहा कि इस पुस्तक को तुम इसी दम नदी में बहा दो । कारण यह बतलाया कि जिस पुस्तक में “मैं पापी हूँ” यह कहा गया है उस पुस्तक को पढ़ने के संस्कार से तुम लोग भी पापी हो जाओगे, परन्तु अपने वेद-शास्त्रों में ईश्वरत्व प्रतिपादक ऐसे वाक्य हैं कि “हे ईश्वर, मैं तुम्हारा ही अश हूँ और तुम सर्व शक्तिमान हो, इसलिये मुझे भी वैसा ही रूप प्राप्त करा दो” । अतएव, इनका अध्ययन करते करते प्राचीन महर्षिगण उस स्थिति को प्राप्त करके सर्वज्ञ हो गये थे । परमहंस देव के उपदेश का सार यह निकलता है कि दया और प्रेम आदि गुण संस्कारजन्य हैं और जैसे जैसे संस्कार होंगे वैसा ही मनुष्य का आचरण और स्वभाव बनेगा, अतएव दुर्गुणास्पद वाक्यों के बोधक जो धर्मवाक्य माने जाते हैं उनका अवलोकन करना छोड़कर और किसी भी सगुण-बोधक परकीय विषय में निर्दयता न करके उसकी उन्नति करने की इच्छा रखना ही मनुष्य के लिये श्रेयस्करो है । अतएव, सगुणबोधकों में यह जो एक जैन धर्म आज अवनत दशा

मे गिरा हुआ देख पड़ता है सो इसे धक्के न देकर सहारा देना ही सब का काम होना चाहिए ।

श्रीयुत तिलक ने गीतारहस्य के विषय-प्रवेश के चौथे पृष्ठ पर लिखा है यह कपिल गीता हठयोग प्रधान है । उसी में इस बात का उल्लेख है कि यह पद्मपुराण से ली गई है । किन्तु पद्मपुराण में यह पाई नहीं जाती, इसके सिवा इस गीता में एक जगह जैन और सूफी (मुसलमान फकीर) पन्थ का उल्लेख है, इसलिये यह कहना पड़ता है कि कपिलगीता, मुसलमानों का आगमन हो जाने के बाद बनी होगी ।”

कपिलगीता को अर्वाचीन सिद्ध करके जैनधर्मको भी अर्वाचीन वनलाया गया है, परन्तु उनका यह कथन गीतारहस्य के ही एक और वाक्य से बिलकुल असङ्गत सिद्ध हो जाता है ।

गीतारहस्य के उपसंहार प्रकरण में (पृष्ठ ४९६) लिखा है “शालिवाहन शक से ६००-७०० वर्ष पूर्व जैन और बौद्ध धर्म के प्रवर्तक उत्पन्न हुए ।” शालिवाहनशक के ६०० वर्ष पश्चात् शङ्कराचार्य का जन्म हुआ, अर्थात् इस समय जैन-धर्म-प्रवर्तक को उपजे २६०० वर्ष होगये । उस (गीतारहस्य) में (पृष्ठ ४००) और भी लिखा है “यह निर्विवाद है कि कलियुग में यतिधर्म को पहले पहल बौद्धों और जैनियों ने खड़ा किया । फिर (पृष्ठ ५७२ में) लिखा है—अन्तिम जैन तीर्थङ्कर महावीर स्वामी वैसे तो बुद्ध के समकालीन हैं, पर उनके आगे ही समाधिस्थ होगये थे । उनका भी उपदेश ऐसा ही है । किन्तु वे, बुद्ध की भांति, अनात्मवादी न थे । वस्त्र प्रावरण आदि ऐहिक सुखों का त्याग” इत्यादि जो गीतारहस्य में लिखा है उसी से सिद्ध होता है कि इस समय अन्तिम महावीर तीर्थङ्कर को २४०० वर्ष हो गये । क्योंकि सन् ईसवी से ४८३ वर्ष पहले बुद्ध का निर्वाण हुआ था (गीता रहस्य ५६६) इस प्रमाण से ऊपर लिखित महावीर स्वामी का समय निश्चिन् होता है और प्रत्येक तीर्थङ्कर का अवान्तर-काल, कम से कम,

५० वर्ष ही माना जावे तो २४ तीर्थङ्करों को कुल १२०० वर्ष चाहिये । अब अनुमान से सिद्ध होगया कि जैनधर्म सन् ईसवी से १७०० वर्ष पहले अस्तित्व मे था ।

“ईसा से कम से कम १४०० वर्ष अर्थात् बुद्ध से कोई ८०० वर्ष पहले श्रीकृष्ण ने भागवत धर्म को प्रवृत्त किया होगा ।” (गी० २० ५४४) इस वाक्य से भागवत धर्म के उदय से पहले ही जैनधर्म का उदय मानना पड़ता है ।

भागवत पुराण में बुद्ध को विष्णु का अवतार वगैरह माना गया है, सो वह पुराण बिल्कुल अर्वाचीन है अर्थात् ग्यारहवें शतक के लगभग का है, यानी बारहवें शतक के “रामानुजाचार्य” के पहले का है । गीता रहस्य के २२० वें पृष्ठ में यह बात स्पष्ट लिखी है और वही पर लिखा है कि भारत के भागवत धर्म में जो नैऋत्य की प्रवृत्ति थी सो वह समय के फेर से घट गई और उसके स्थान पर जब भक्ति को प्रधानता प्राप्त हो गई तब उस दूसरे रूप (अर्थात्) भक्ति प्रधान भागवत धर्म को प्रतिपादन करने के लिये भागवत पुराण पीछे से बनाया गया । इस वाक्य से गीतारहस्य-प्रणेता ने भागवत पुराण की अर्वाचीनता पूर्ण रूप से निश्चित कर दी है । फिर पीछे, विषय-प्रवेश के चौथे पृष्ठ पर भागवत और पद्मपुराण-सम्बन्धी विवेचन करते समय यह लिखा गया है कि कपिल गीता नामक जो एक ग्रन्थ है, उसमें यह कपिलगीता भागवत और पद्मपुराण की है, सो उसका यह वाक्य ठीक नहीं है । क्योंकि इस कपिलगीता में जैन धर्म और मुसलमान धर्म का उल्लेख है । अतएव यह कपिलगीता जैनादि धर्म की उत्पत्ति हो चुकने के बाद बतलाई गई होगी । इस अनुमान के आधार पर कपिलगीता को बिल्कुल अर्वाचीन और भागवत आदि पुराणों को जैनादि धर्म की अपेक्षा प्राचीन दिखाने की जो चेष्टा की गई है सो उसका पूर्वा पर विरोध कैसे दूर होगा ? पाठक इस बात पर विचार करेंगे ही । क्योंकि गीतारहस्य-प्रणेता के वाक्य से ही जैन धर्म के महावीर नामक अन्तिम तीर्थङ्कर को इस समय २४०० वर्ष हो गये हैं तो फिर दसवें ग्यारहवें

शतक के, पौराणिक काल के, भागवत आदि पुराणों की अपेक्षा जैन धर्म आधुनिक कैसे सिद्ध होगा ? अतएव, रहस्य-प्रणेता की इस असं-
ज्ज्ञता पर पाठक अत्रिध ही ध्यान दें ।

“भारतवर्ष मे उस समय जो धर्म प्रचलित थे उनमें जैन धर्म और उपनिषद् धर्म पूर्णतया निवृत्ति-प्रधान थे” (गी० २० ५००) रहस्य-प्रणेता ने यह लिखकर आगे यह कहा है—“जैन धर्म की भांति बौद्ध धर्म भी वैदिक धर्म रूप अपने पिता से, अपने लिए, आव-
श्यकतानुसार सम्पत्ति का हिस्सा लेकर कुछ कारणों से, विभक्त हो गया हुआ लड़का है ।” इस वाक्य की असंज्ञति अगले विचारों से स्पष्ट हो जायगी । जिस तरह जैन धर्म का पिता वैदिक धर्म है उसी तरह जैन धर्म उसका पुत्रस्थानीय है यह बात उन्हीं के वाक्य से स्पष्ट होती है । अर, यदि कोई लड़का कुछ अपना हिस्सा लेकर पितृ-सम्पत्ति से अलग हो जाय तो क्या वह अपने पिता के वश का अथवा पितृ-पिता-
मह आदि की परम्परा का आनुवंशिक न समझा जायगा ?

इसी तरह वेद जब कि पुरातन और परममान्य हैं तब उसके पुत्ररूपी जैन धर्म को भी पुरातन और मान्य—गीतारहस्य के ही वाक्य के आधार पर—कौन न मानेगा ?

जब गीता रहस्य के ही वाक्य से जैन धर्म को वेदों का पुत्रत्व सिद्ध होता है तब उन्हीं गीता रहस्य के प्रणेता ने ४८८ वे पृष्ठ मे ये उद्गार निकाले कि “वैदिकेतर धर्मों का विचार किया जाय तो देख पड़ेगा कि उनमे से अनेकों ने पहले से ही सन्यासमार्ग को स्वीकार कर लिया है । उदाहरणार्थ, जैन और बौद्ध, ये दोनों सम्प्रदाय आरम्भ से ही निवृत्ति प्रधान थे और ऐसा ही ईसा का भी उपदेश है ।” ऐसे वाक्यों के द्वारा रहस्य के प्रणेता ने जैन धर्म को, वैदिकेतर धर्म यानी ईसाई आदि धर्म के साथ बराबरी करके उद्गार निकाले हैं ? वास्तव में देखा जाय तो किसी समय बहुतेरे जिह्वालोलुप लोगो ने वैदिक धर्म के नाम से—

“न मांस भक्षणो दोषो न मद्ये न च मैथुने ।
प्रवृत्तिरेवा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला ॥” मनु० ॥

इत्यादि अनेक श्लोक मन्वादि स्मृतियों में प्रमाण के लिये मिला करके मद्य-मांस आदि का दुष्ट आहार प्रचलित कर दिया था । तब जैन धर्म न वैदिक धर्म के उत्तमोत्तम तत्व ‘स्व’ और ‘पर’ एवं आत्मिक मानसिक और शारीरिक सुख के साधन के लिये जो जो तत्त्व उपयुक्त प्रतीत हुए उन्हें ग्रहण कर लिया। इस प्रकार के अपनी तथा ‘पर’ की उन्नति कर देने वाले जैन धर्म का महान् उपकार मानना और स्तुति करना मनुष्यमात्र का कर्त्तव्य है । जब कि हम वैदिक तत्वों को सनातन मानते हैं तब जैन धर्म तत्व को भी सनातन मानना ही ठीक है ।

उपनिषद् और ब्रह्मसूत्र का, निरे निवृत्ति प्रधान होने पर भी, हम लोग बहुत आदर करते हैं । उतना ही मान, गीतारहस्यकार के विवेचन के अनुसार यदि जैन धर्म को निवृत्ति प्रधान मान लिया जाय तो, उसे भी दिया जाना चाहिए ।

परन्तु गीता रहस्य के प्रणेता का जैनधर्म को एक स्थान पर बिलकुल अर्वाचीन सिद्ध करना और अन्य स्थानों पर जरा प्राचीन मान लेना किसी भी विचारवान् मनुष्य को मान्य नहीं हो सकता । मेरी राय से और आगे जो ‘जैनधर्मारोप निरसन’ नाम की लेखमाला प्रकाशित होगी इसके विचारों के अनुसार आपको मालूम हो जायगा कि जैन धर्म सनातन और सर्वमान्य है ।

इस लेख में गीतारहस्य के पूर्वापर विरोध का ही दिग्दर्शन किया गया है । इसी माला में अब, पूने के श्रीयुक्त विष्णु वामन बापट के लिखे हुए “ जैन दर्शनसार ” नामक ग्रन्थ की पूर्ण खण्डन रूप विवेचना की जायगी । उक्त ग्रन्थ में बापट महोदय ने जैन धर्म का खण्डन किया है । जैन दर्शनसार का खण्डन करने के पश्चात् यह दिखलाया जायगा कि श्रीशङ्कराचार्य ने जैनधर्म पर काल और स्थिति

के अनुरूप कैसे आरोप लयाये थे । फिर इस माला में कर्ताटकी भाषा के आदि पुराण प्रभृति जैनधर्म ग्रन्थों के आधार पर कर्नाटक के बड़े बड़े जैन पण्डित, कवि, और महात्माओं का जीवन चरित प्रकाशित किया जायगा । इससे पाठकों को मालूम होगा कि वहां कैसे कैसे जैन पण्डित और कवि होगये हैं । *



* श्री जिन जयकार । *

(लेखक—श्री स्वामी हगिहरानन्द जी ।)

जय जिनेन्द्र जय जितेन्द्रीय जय ज्ञान प्रकाशक ।
जयति संत अर्हत तिमिर अज्ञान विनाशक ॥
जय जय पद निर्वाण दान दाता सच्छासक* ।
जय जय जय नय स्याद्वाद विज्ञान विकाशक ॥
जय जय तीर्थकर सुथिर मुनिवर सिद्ध शिला अचल ।
जय जयन्ति जिन देव जय श्रावक श्रेयस्कर विमल ॥

* इस लेख में मराठी गीतारहस्य के ही पृष्ठाङ्क दिये गये हैं (लेखक)

ॐ सत् शक्त ।



❀❀ जैन-पथ-प्रदर्शक । ❀❀

(लेखक—श्रीपुत रामचरित उपाध्याय ।)

पर सुख को अपना सुख मानो, विश्वमात्र को अपना जानो ।
दुर्जन-सुजन-भेद पहिचानो, समय सोच लो हठ मत ठानो ॥

सर्वस शत्रु रहे हैं लूट ।

देख हमारे घर की फूट ॥ १ ॥

नरक-हेतु हिंसा मत करिए, परके स्वस्व कभी मत हरिए ।
दुष्टजनों से कभी न डरिए, धर्म-युद्ध में बढ़ कर मरिए ॥

सच्ची तभी मिलेगी मुक्ति ।

भोग्य-भुक्ति की करिए युक्ति ॥ २ ॥

सत्य-शास्त्र को कभी न छोड़ो, असुरों से नाता मत जोड़ो ।
मातृ-भूमि से मुख मत मोड़ो, दास्य-रज्जु के बन्धन तोड़ो ॥

वंश-वंश के रखिए मान ।

चहे स्वात्म का हो बलिदान ॥ ३ ॥

छलियों के छल में मत आओ, ज्यों त्यों आगे बढ़ते जाओ ।
जो बिछुड़े हों उन्हें मिलाओ, ऐक्य-मंत्र को पढ़ो पढ़ाओ ॥

उठो निशा का है अवसान ।

कर्म-स्थल में करो पयान ॥ ४ ॥

दया-दान को करते रहिए, पर के परिभव को मत सहिए ।
करिए उसे बात जो कहिए, तजिए उसे न जिसको गहिए ॥

महावीर की हो सन्तान ।

कर्म-मर्म है धर्म निधान ॥ ५ ॥

क्या हमें जीना है ?

(लेखक—भोग्युत वाडीखाल मोतीखाल की शाह ।)



छ लिखो, कुछ भी तो हमारे मासिक के लिये लिख कर भेजो ऐसी प्रार्थना कई दफा 'जैन-पथ-प्रदर्शक' ने मुझसे की है । क्यों ? सम्पादक जैन-पथ-प्रदर्शक मानते हैं कि मैं एक प्रसिद्ध व लोकप्रिय लेखक हूं । मेरे लेख से जैन जाति को लाभ ही होगा ।

परंतु लगभग पाव सदी तक लेखक, सम्पादक वक्ता और अश्रान्त आंदोलनकारी होने के बाद अब मैं बहुत ही अल्पभाषी हो गया हूं । जिस भूमिका पर खड़ा रह कर वस्तु स्वरूप देखा जाता है वह भूमिका (Stage) ज्यों २ ऊंची होती जाती है त्यों २ दृश्य पहिले से और ही दिखाई देता है । मनुष्य जैसा देखता है वह ही वर्णन करता है और उस वर्णन को ही 'लेख' कहते हैं । पुस्तकें पढ़ कर 'लेख लिखना' उसको मैं लिखना नहीं मानता हूं वह तो नकल करना है या पांडित्य का पाखंड है । जो कुछ अपनी भूमिका से देखा जाय जो कुछ अपने अनुभव में आवे उसको लेखनी द्वारा प्रकट करना यही स्वाभाविक व प्रमाणिक लेख है जितनी उच्च भूमिका से मनुष्य देखेगा उतना अधिक विस्तृत, अधिक तन्दुरुस्त, अधिक शक्तिदायक उसका दृश्य होगा और उतना ही अधिक गौरवशाली उसका लिखना होगा तात्पर्य यह है कि लिखने में प्रथम सवाल भूमिका का है, लेखक कहां खड़ा हो कर और किस विकास श्रेणी परसे लिखता है यही मुख्य सवाल

है। फिर दूसरा सवाल लेखक की चक्षु की निर्मलता व शक्ति का है। जो लेखक विकार चक्षु वाला या दीर्घ दृष्टि से वंचित होगा तो उसका 'देखना' भी दूषित होगा। लागणी तत्व (Emotion) से रंगी हुई दृष्टि वस्तु स्वरूप को अपनी लागणी (Emotion) से रंगीन बनाती है।

जहां तक मनुष्य किसी भी एक सम्प्रदाय में स्थिर रहता है वहां तक वह जो कुछ देखता है विचारता है वह सब "लागणी" से मिला होता है शुद्ध नहीं हो सकता है। यह एक दूसरी बात है कि प्रारम्भ में किसी भी एक सम्प्रदाय, एक गुरु और एक सिद्धान्त पर अनु-राग अवश्य होना ही चाहिये क्योंकि इसी के द्वारा आगे बढ़ने की ताकत प्राप्त होती है और यह है भी सत्य कि "लागणी" द्वारा ही मनुष्य धीरे-२ "लागणी" रहित बनता है, अज्ञान द्वारा ही मनुष्य ज्ञानी बनता है। अनेकान्त सत्य में हर एक चीज को स्थान है। "लागणी" की तरह बुद्धि भी 'देखन' में विघ्नरूप है। लागणी और बुद्धि दोनों क्षेत्रों से दूर रहकर जो कुछ देखा जाता है वही सच्चा देखना है। परन्तु 'लागणी' और बुद्धि से दूर रहना सभी के लिये ईष्ट नहीं है। शक्य भी नहीं है, यही नहीं परन्तु लागणी व बुद्धि के जरिये ही मनुष्य विकास होता है जो मनुष्य लागणी व बुद्धि के क्षेत्र से थोड़ा भी आगे बढ़ा है वह इन चीजों को धिक्कारेगा नहीं, परन्तु जब समाज के लिये कुछ भी प्रवृत्ति करना होगा तब समाज की लागणी व बुद्धि का स्वरूप समझ कर इन्हीं तत्त्वों को अपना 'साधन' बनाकर अपने उच्चादर्श की सफलता करेगा। वह अपना उच्चादर्श समाज को नहीं देगा; क्योंकि समाज इसके लिये 'अधिकारी' नहीं है; इससे समाज को वह पसंद नहीं पड़ेगा, और जो पसंद ही न हो उसका अनुपालन तो हो ही कैसे ? और वह लोगों के ख्याल (भावनाएँ Concepts) की भी बाहवाह नहीं करेगा (ऐसा गन्दा खेल उससे हो ही नहीं सकता) परन्तु वह लोगों के भावना-ख्याल Concept को जरा ऊँचा करेगा। समाज को तो यह थोड़ा सा ऊँचा करना भी 'नया

धर्म' सा दिखाई देगा, और कष्टरूप मालूम होगा परन्तु सच्चा 'दृष्टा' लोक गण को कष्ट देता ही जायगा, लोगो के सामने रखने की 'भावना' को विस्तृत और ज्यादा विस्तृत करता ही जायगा, और कहीं भी स्थिर नहीं बैठेगा । इस तरह वह समाजका विकास करता रहेगा और इसी प्रवृत्ति से अपना खुद का भी विकास करता रहेगा । दृष्टा जो कुछ समाजिक प्रवृत्ति करता है सिर्फ 'स्वविकास की लीला' है परोपकार नहीं—यद्यपि लोकमत हमेशा उसको 'परोपकार' कहता है ।

इतना प्रस्ताव करना आवश्यक था । अब मैं किस समय में और किन के लिए लिखने की प्रवृत्ति स्वीकारता हूँ इस बारे में थोड़ा ख्याल करना आवश्यक है इस समय में यह लेख लिखना है कि जिस समयमें दुनिया भर में अशान्ति हो रही है । यह सब देखते हुए भी भारतवर्ष पुरानी भावनाएँ, पुरानी आदतें, पुरानी रूढ़ि, पुरानी प्रकृति जरा भी बदल नहीं सका है, और उलटा गर्व करता है कि "हमारा सनातन वेद धर्म (या हमारा पवित्र जैनधर्म) हमारी रक्षा करेगा" । और वेद धर्म व जैनधर्म का भी उसी स्वरूप को सच्चा कहेगा जो कि अपने पिता ने सच्चा माना हो, या किसी एकान्तवादी या मर्यादित दृष्टिवाले गुरु ने सिखाया हो ।

कुदरतके चारों ओरोंको एक २ जमाना मिल जाने के बाद जो नई समाजव्यवस्था होगी उसमें चारों तत्त्व (तत्त्वज्ञान, ज्ञातृत्व, संप्रद-शक्ति व सेवा भाव) का सम्बन्ध होगा । वहाँ तक मनुष्य एक एक 'वाद' को 'सत्य' मान कर उसी का प्रयोग करेगा, दुःख उठाता रहेगा, और दुःख के जरिये ही 'अनुभव' प्राप्त करके अनेकांतवादी बनेगा ।

इस हालत में स्थितिस्थापकता काम नहीं देगी । उत्थान परिवर्तन और गतिशीलता की आवश्यकता होगी । और मैं तो उत्थान+परिवर्तन+गतिशीलता को ही 'धर्म' कहता हूँ । जैनतत्त्ववेत्ताओं ने भी 'गति' को सहाय देने वाला तत्त्व सो ही धर्म' ऐसा कहा है । Activity गति-प्रवृत्ति धर्मतत्त्व ही से होती है अन्यथा वह अशक्य है । जहाँ

Activity गति-क्रियातत्परता प्रवृत्ति-प्रगति नहीं है, वहां धर्मतत्त्व नहीं है। क्रिया शून्यता या क्रिया कातरता, हर एक प्रवृत्ति में 'पाप' मान कर अक्रिय बैठना, वर्तमान से संतुष्ट होकर चुपचाप पड़े रहना सच-मुच 'अधर्म' ही है। पाप और पुण्य निश्चय दृष्टिसे देखा जाय तो कल्प-नाये (Concepts and not 'things--in--themselves') हैं, जीवात्मा की दो पांखें हैं जिनसे वह गति करता है। कुदरत में ऐसा कोई कार्य नहीं है जिससे कि अकेला (अभिन्न) पुण्य ही पुण्य हो। जीवन पुण्य व पाप दोनों के सहारे से ही चलता है। पुण्य-पाप की कल्पना से छूटना यही मुक्ति (छुटकारा) है। यह छुटकारा कथन मात्र से नहीं हो सकता—दीर्घकाल तक पुण्य-पाप के घोर बनमें चल कर बन से पार जाना—चल कर ही बन का अंत लाना—उसी का नाम छुटकारा है। 'मैंने बन का त्याग किया' ऐसा कथन करने से या त्याग के चिन्ह रूप वेष धारण करने से कुछ बन अदृश्य नहीं होता है। इस बन में चलना ही पड़ेगा; उसका अभाव तब ही होगा जब कि तुम इसके अंत तक चले जाओगे, चल कर ही उसका अंत लाओगे यही सबब है कि इस बन में चलने वाले को चाहिये कि वह एक निडर योद्धा बने। यही सबब है कि ऐसे मुक्ति के सब्बे उम्मीदवार को श्री महावीर ने 'जैन' कहा है और वेदों ने 'आर्य' कहा है।

आजकल जैन व आर्य प्रजा जिस स्वरूप को धर्म समझती है उस स्वरूप को छोड़ना ही पड़ेगा, बिना विलंब छोड़ना पड़ेगा। कोई भी वस्तु, कोई भी घटना कोई भी सिद्धान्तसे डरना नहीं, प्रवृत्ति परायण और साहसिक बनना और हर प्रकार की 'तुच्छता' पर विजय प्राप्त करना यही जैनो का व आर्यों का धर्म बनना चाहिये।

व्रत, प्रत्याख्यान, तपश्चर्या, स्वाध्याय याने ज्ञानाभ्यास आदि कर्त्तव्य कायम रखना होगा, परंतु उनका आशय समझना होगा, शक्ति को मारने में नहीं परंतु शक्ति को बढ़ाने में साधन रूप मानकर उनका अनुपालन करना होगा।

इस आशय को दृष्टि समक्ष रखकर मैं जैन-धर्म के अनुसार गृहस्थ-धर्म का पालन करने को बारह व्रत का स्वरूप इस मूजब बजाता हूँ:—

(१) शक्ति को यहां तक बढ़ाओ कि जिससे तुम्हें अपने से कम ताकत वाले प्राणी के मारने में 'शर्म' या 'लघुता' का भान हो । उदारता, दया व क्षमा उसी से हो सकती है जिसमें शक्ति कूट रही हो । निर्बलों से क्षमा दया नहीं हो सकती । निर्बल को दया सिखाना उसको ज्यादातर निर्बल बनाने का काम है । दया, उदारता, क्षमा कृत्रिम नहीं होनी चाहिये, 'स्वाभाविक' होनी चाहिये । अपने से तुच्छ प्राणी की ओर दया-क्षमा का व्यवहार करना भूषण है ।

(२) जो चीज जैसी तुमने देखी हो वैसी ही प्रगट करो । लोक भय, नैतिक निर्बलता, लोकेषण इत्यादि तुच्छ तत्वों की दरकार मत करो । सत्य कुछ भी हो, तुमने जिस स्वरूप में चीज को देखा है उसी स्वरूप में उसका व्यान करना अपने आपको वफादार रहना यही तुम्हारा 'सत्य' है । स्वार्थ या डरसे अपने सत्य को भ्रष्ट मत करो ।

(३) जिस चीज, जिस मनुष्य, जिस हक्क, जिस यश पर तुम्हारा 'हक्क' न हो उस पर 'हक्क' मत करो । जिसका तुमने 'मूल्य' न दिया हो, जिसके लिये आत्मभोग न दिया हो, ऐसी कोई भी चीज, यश, या व्यक्ति पर अपना हक्क मत करो ।

(४) तुम्हें जो वीर्य मिला है वही तुम्हारा सञ्च धन है—वही मनुष्यत्व है—वही श्रेष्ठ खजाना है । सारे जीवन का रहस्य वीर्य है । उसका दुरुपयोग मत करो । एक स्त्री व एक पुरुष दोनों की संयुक्त शक्ति से ज्यादातर शक्तिवाली व्यक्ति उत्पन्न करने के लिये—बस यह एक ही 'उपयोग' के लिये—मनुष्य को वीर्य सञ्च का अधिकार है—इन्द्रियों

की गुलामी के लिये नहीं। इसलिये मन को मजबूत बनाओ। आत्म निग्रह और पराक्रम जहां तक तुममें न आवे वहां तक लग्न कदापि मत करो। और लग्न को अमर्यादित विषय सेवन का 'कन्ट्राक्ट' मत समझो।

(५) परिग्रह याने मालिकी (Ownership) की इच्छा को अंकुश में रक्खो। जिंदा रहने के लिये और शक्ति बढ़ाने के लिये जो जो आवश्यक हो उन सबको स्वीकार अवश्य करो, परंतु लोभ या ममत्व भाव से चीजों का संग्रह मत करो। प्रमाणिक उद्यम से यदि तुम्हें आवश्यकता से भी ज्यादा प्राप्ति होवे तो उसका व्यय औरों को आगे बढ़ाने में करो। धनादिके लिये तुम नहीं हो, तुम्हारे लिये धनादि है। धनादि 'लक्ष्य' नहीं है, लक्ष्य के 'साधन' मात्र समझना चाहिये। धनादिका गुलाम बनना जैन या आर्य को असत्य मालूम होना चाहिये क्योंकि यह तो गुलामों का काम है। जरूरत से ज्यादा परिग्रह का व्यय औरों का विकास करने में करना वह भी 'दया' से नहीं परंतु मनकी मौज के खातर—अपने आनंद के लिये—करना चाहिये। कीर्ति के लिये दान करना यह भी तो तुच्छता की गुलामी है। एक सच्चा जैन या आर्य इतना विकसित होना चाहिये कि उसको औरों की शक्ति बढ़ाने में कारणभूत बनना गौरवका और आननंद का विषय मालूम होना चाहिए।

(६) ऐसा भ्रमण (travelling wandering) मत करो कि जिसमें कुछ उच्चाशय न हो। ज्ञान या अनुभव प्राप्ति, बल या उत्साह या तन्दुरस्ती की प्राप्ति, धन की प्राप्ति, देशहित या समाजहित इत्यादि आशय से कहीं भी—समुद्रपार भी—खुशी से भ्रमण करो और अपनी शक्ति को बढ़ाओ; परन्तु मौजमजा के लिए या खुशामद लेने या देने के लिये कहीं भी मत जाओ।

(७) उपभोग—परिभोग के पदार्थों का संकोच करो अर्थात् जितेन्द्रिय बनो। मिताहारी, नियमित, संयमी, सादा बनो।

आवश्यकताओं को बढ़ाओ मत, कमी करो । किसी का अनुकरण, बड़े दिखाने की लोलुपता, खानदानी का झूठा समत्व इत्यादि से दूर रहो । ज्यों २ ज्यादा पदार्थों का दासत्व होगा त्यों २ शारीरिक, मानसिक व आत्मिक निर्बलता ज्यादा होगी ।

(८) निरर्थक प्रवृत्ति से मन को, वाचा को और शरीर को बचाओ । तुम्हारी आत्मा मे कितनी भी शक्ति क्यों न हो, उस शक्ति का व्यवहार तो मन-वाणी-शरीर द्वारा ही होता है, इसलिये इन तीनों शक्तों का व्यय विवेकपूर्वक करना चाहिये । खटपट, निदा, दुर्ध्यान, चिंता, कुतर्क, खेद, भय इत्यादि से इनका दुर्व्यय मत करो । आर्त्त-ध्यान (याने खेद-चिंता) व रौद्रध्यान (याने क्रोध-वैर) से शरीर व मन अशक्त व रोगीष्ट बनता है और आत्मशक्ति पर आवरण आता है । आत्माकी अमरता, अनंत शक्ति और आनंदमय स्वरूपका चिन्तन करो और उस चिन्तन से खेद, चिंता भय, क्लेषके विचारोंको रोको ।

(९) सुख या दुःख का असर आत्मा पर न होने पावे इसलिये 'समोलवृत्ति' प्राप्त करो । इसी अभिप्राय से प्रति दिन थोड़ासा समय बचाकर एकांत में सामायिक व्रत आदरो । सामायिक व्रत की विधि मालूम न हो तो एकांत में बैठ कर किसी भी आदर्श पुरुष के महत्व पूर्ण कार्यों पर मनन करो या तुम्हारा मूल स्वरूप जोकि अमर, ज्ञान-मय और आनंदमय है उसकी भावना भावो । इससे चित्त को शान्ति मिलेगी और शक्ति का अविर्भाव होगा, जिससे तुम प्रवृत्तिक्षेत्र में वीर की तरह खेल सकोगे ।

(१०) विदेशी चोजों का त्याग करो । स्वदेश का धन व आत्म गौरव लुटाने में मददगार मत बनो ।

(११) प्रतिमास एक वक्त 'उपवास' करके आत्म रमणताका परिचय दो । उपवास से सारा मल दूर हो जायगा और पावन क्रिया के अवश्य तन्दुरस्त बन कर शरीर मे निरोग्यता ही नहीं परन्तु स्फूर्ति प्रगट होगी । उपवास से मन भी शान्त बनेगा । अन्न मे से शक्ति

उत्पन्न होती है यह ख्याल सरासर झूठ है, शक्ति आराम में से आती है। उपवास करके फिरो शुद्ध (बलदायक) व शुभ (सबका भला हो ऐसी) भावना में रमण करो।

(१२) सम्प्रदाय, समाज और देश को उपकारक हों ऐसे पुरुषों की सेवा—जब भी प्रसंग मिले—उल्लास से करो। जो पुरुष समाज सेवा या देश सेवा या तत्त्वचिंतन में मग्न रहता है उसको निज की आवश्यकताओं का भी ज्ञान नहीं रहता है।

वारह व्रत का यह स्वरूप—इन दिनों में—इन परिस्थितियों में—अति उपकारक और आवश्यक है। इन व्रतों के अंगीकार करने से प्रत्येक भारती इन्द्रियनिग्रही, इच्छाशक्ति will-power का भण्डाररूप, तन्दुरुस्त व बलवान शरीरवाला, उत्साही, निडर, उच्चाभिलाषी, स्वातन्त्र्य प्रेमी, स्वाभिमानी एक संतुष्ट Satisfied स्वदेश प्रेमी व वीर बनेगा और जिसमें ऐसी शारीरिक मानसिक व आध्यात्मिक शक्ति होगी वही अब जी सकेगा। अशक्तिमान, डरपोक, पराश्रयी, इन्द्रिय लोलुपी मनुष्य के लिये जीना भी अशक्य होगा।

हमारे धर्मका नाम देखो—कैसा जयशाली है ? हमारे परमेश्वर आदर्श पुरुष का नाम देखो—उसका नाम है महा-वीर। हमारा ध्येय देखो वह है हर प्रकार की गुलामी में से 'मुक्ति' याने छुटकारा स्वातन्त्र्य ! हमारे शास्त्रों में जगह जगह उपदेश क्या है सो देखो वे कहते हैं शत्रुओं से लड़ो बस लड़ते ही रहो, यहांतक कि श्रेष्ठ पुरुष याने पुरुषोत्तम याने तीर्थङ्कर तो कर्म रिपु के आक्रमण की राह देखकर नहीं बैठे रहते हैं परन्तु शत्रुओं के घर पर जा आक्रमण करके विजय प्राप्त करते हैं (उस क्रियाको शास्त्रमें 'उद्दीरण' कही है) अब कहिये जैन धर्म में केवल युद्ध, विजय, पराक्रम, सक्रियता, उत्साह, शौर्य, मरदानगी के है ही क्या ? इस धर्मके ही नामसे मनुष्य को कातर, डरपोक, निर्बल अक्रिय, दयापात्र दृश्य बना देना मानो देशद्रोह व आत्मद्रोह ही है।

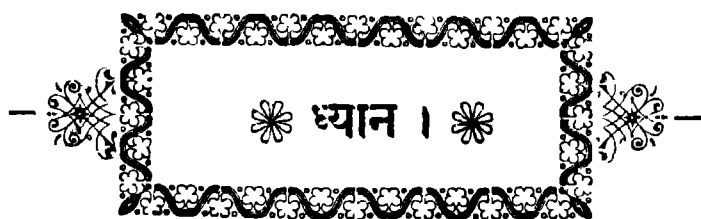
नोट—इस लेख का बहुतांश भाग प्रेस मैनेजर ने छापना स्वीकार नहीं किया (सं०)

❀ प्रार्थना : ❀

(लेखक—श्रीयुक्त कृष्णलाल वर्मा 'प्रेम' बम्बई)

हे करुणानिधि नाथ निरंजन ;
घट घट अन्तर्यामी हो ।
दुःख विघातक जन सुखकारक ,
तीन भुवन के स्वामी हो ॥
भारत प्यारा देश हमारा ;
विपत्तियों का स्थान हुआ ।
पूँग, मरी अरु इन्फ्लूएन्जा ;
हर घर का महमान हुआ ॥
ज्ञान प्रभा बिन घोर अधेरा ;
भारत में चहुँ ओर हुआ ।
शम, दम, इन्द्रिय-निग्रह हीरा ;
क्या जाने कहें लोप हुआ ॥
हुनर कला नही नाथ रही अब ;
भारत मे अब शेष अहो !
साधन उदर पूर्तिका है क्या ;
बिना दासता अन्य कहो ?
आओ बदलो हीन दशा यह ;
बल दे प्रभु हम विनय करे ।
भारत हो गुलजार पुन. हम ;
स्वतंत्रता उपभोग करे ॥





(लेखक—श्रीयुत बाबू पूर्णचन्द्र जी नाहर एम० ए० ।)



न धर्म में किसी विषय या वस्तु पर चित्त के एकाम्र भाव का नाम ही 'ध्यान' कहा है । आंख मूंद कर आसन लगा कर योगीराज बन एकान्त में बैठ कर ध्यान करना ही ध्यान होता है ऐसा नहीं, किन्तु मनोवृत्तियों को किसी एक ओर समग्र खेंचने का ही सर्वज्ञो ने 'ध्यान' नाम दिया है । ऐसे ध्यान के असंख्य क्या अनंत भेद हो सकते हैं अर्थात् अनंत विषयों पर जीवों की वृत्तियां आकर्षित हो सकती हैं और उक्त प्रकार से जब किसी विषय पर पूर्ण मात्रा से एकाम्रभाव होता है उसी को ध्यान कहा गया है । जैन विद्वानों ने भव्य जीवों को सरलता से समझाने के लिये इसी ध्यान के मुख्य चार भेद कहे हैं :—(१) आर्त्त (२) रौद्र (३) धर्म और (४) शुद्ध । पुनः आर्त्त ध्यान के भी चार भेद बतलाये हैं (१) इष्ट वियोग (२) अनिष्ट संयोग (३) रोग चिन्ता (४) अप्र शोच । इसी तरह 'रौद्र' ध्यान के भी चार भेद जैन शास्त्रकारों ने कहे हैं । (१) हिंसानुबंधी (२) मृषानुबंधी (३) स्तेयानुबंधी और (४) समरक्षणानुबंधी । तीसरा 'धर्म' ध्यान के भी चार विभाग बताये हैं । (१) आज्ञा विचय (२) अपाय विचय (३) विपाक विचय (४) संस्थान विचय । अन्तिम 'शुद्ध' ध्यान के चार भेद इस प्रकार से कहे हैं (१) पृथक्त्व वितर्क संप्रविचार (२) एकत्व वितर्क अप्रविचार (३) सूक्ष्म क्रिया प्रतिपाति (४) विच्छिन्न क्रिया अप्रतिपाति । ऐसे केवल भेदों के नाममात्र से 'ध्यान' का पूरा २ भाव समझ में आना कठिन है । इसलिये यहां पर संक्षेप में उपर्युक्त भेदों का कुछ खुलासा लिखा जाता है । आशा है कि इस से इस गहन विषय को पाठकों को कुछ आस्वादन मिल जायगा ।

जैन दर्शन में जीव व आत्मा अथवा परमात्मा को भिन्न २ पदार्थ नहीं बताया गया है । उसमें केवल एक जीव मान कर उसी जीव की भिन्न ५ अवस्था सूचित की गई है और यह भी माना गया है कि जीव निज के उपाज्जित कर्मानुयायी फल का भोग करता है और इन्द्रियादि के उपलब्ध से केवल शरीर द्वारा ही कर्म करता है ऐसा नहीं किन्तु मानसिक और वाचनिक क्रिया द्वारा भी करता है और उसकी संख्या भी कम नहीं है । उसमें भी मानसिक क्रिया के गुरुत्व का कहना ही क्या ? जीवों के मन की प्रधान क्रिया ही चिन्ता या 'ध्यान' है । जो चिन्ता जीव के मानसिक आर्त्त या कष्ट का कारण होवे ऐसी चिन्ता या ध्यान का नाम 'आर्त्त' ध्यान है । इस पंचम काल में ऐसे यातना रूपी 'आर्त्त' ध्यान की कुछ न्यूनता नहीं है । इस आर्त्त-ध्यान का पहिला भेद जो 'इष्ट वियोग' बतलाया गया है वह सांसारिक पुरुषों के कुछ पाप का उदय होते ही आ पड़ता है । अपने प्रिय और प्यारी वस्तु का वियोग, विच्छेद और जहां पर पुनः प्राप्त करने की या होने की कोई भी आशा नहीं है उस समय कहां तक दुःख दायक हो सक्ता है सो भुक्त भोगी जीव अच्छी तरह जानते होंगे । यहां पर यह न समझना चाहिये कि केवल अपने वल्लभ स्त्री-पुत्र पौत्रादि अथवा प्रिय मित्रादि के वियोग के कारण शोक अथवा विलाप से ही आर्त्त-ध्यान होता है किन्तु किसी वस्तु सुई से लेकर हाथी घोड़े तक चाहे चेतन चाहे अचेतन जिसका विच्छेद या नाश होने पर जीव एकाम्र भाव से चिन्ता या ध्यान रखता है वह सब आर्त्तध्यान के भीतर सम्मिलित होना चाहिये ।

इसी तरह जीव के यदि अनिष्ट या अप्रिय वस्तु अथवा दूसरे जीव का संयोग होकर सर्वदा चित्त में कष्ट रहता है तो वही दूसरा 'अनिष्ट संयोग' आर्त्तध्यान है । भारतवर्ष में ऐसे बहुत से दृष्टान्त मिलेंगे जैसे किसी विद्वान् या उच्च भाव में मग्न पुरुष के साथ किसी अशिक्षित कलह प्रिय या नीच स्वभाव की युवती से विवाह होने पर उस पुरुष की अथवा किसी नई रोशनी वाली युवती से किसी ग्रामवासी

अशिक्षित पुरुष से पाणिग्रहण होने पर उस स्त्री को जो चिन्ता या ध्यान सर्वदा विद्यमान रहेगा वही 'अनिष्ट संयोग' आर्त्तध्यान है । ऐसी चिन्ता की मात्रा वहां बढ़ती ही जायगी जहां अनिष्ट अप्रिय होने पर भी किसी उपाय से उस वस्तु वा जीव को दूर करना कठिन होगा । इसी तरह चाहे समाज के कारण चाहे राज्यादि के नियमों के कारण चाहे और किसी प्रकार की अशक्ति के कारण जब जीव अनिष्ट वस्तु को दूर करने में असमर्थ होता है उस समय उसके चित्त में इस प्रकार का 'अनिष्ट संयोग' ध्यान लगा रहता है ।

रोग चिन्ता भी बड़ी भारी चिन्ता अथवा आर्त्तध्यान का कारण हो जाता है । उस समय में 'कटा जाऊँ' 'किसकी दवा खाऊँ' इत्यादि नाना प्रकार की चिन्ता जब चित्त में बढ़ती जाती है तब जीव को भरपूर आर्त्तध्यान रहना है, इसी रोग चिन्ता को आर्त्तध्यान समझना चाहिये ।

इसी तरह किसी २ जीव को 'अप्रशोच' की ऐसी चिन्ता रहती है कि वह सदा काल एक न एक कल्पित भाव को पकड़ता हुआ उसी सोच में पड़ा रहकर कष्ट पाता है । ऐसे जीव को अच्छी भावना का समय नहीं मिलता है । मुझको खुद ऐसे कितनेही महाशय मिले हैं कि जिनको घण्टों समझाते रहे तो भी उनके चित्त का भ्रम दूर नहीं हुआ और वे अप्रशोच आर्त्तध्यान में पड़े रहकर वृथा कर्म का बोझ बढ़ाते रहे । ऐसे जीव छोटे २ विषयो पर इतना अप्रशोच ध्यान बढ़ा लेते हैं कि जिसका अंत ही नहीं दिखाई पड़ता । बैठे २ उनका ध्यान चीन, जापान, इंगलैन्ड, अमेरिका आदि सब जगह फिर कर भी अन्त न पाकर पुनः कोल्हू के बैल की तरह भ्रमण करना आरम्भ करते हैं ऐसे जीव वृथा 'अप्रशोच आर्त्तध्यान' में रह कर सदा काल कष्ट उठाते हैं ।

दूसरा रौद्रध्यान खास करके दूसरे जीवों के कारण किसी जीव को किसी प्रकार की हानि अथवा कष्ट पहुंचने पर उस जीव के चित्त में

प्रबल द्वेष भाव अथवा प्रतिदिना की चिन्ता एकाग्र भाव से वर्तमान रहना ही 'रौद्रध्यान' बतलाया जाता है। इस ध्यान का प्रथम भेद 'हिमानुबन्धी' है जो अत्यन्त द्वेषभाव से किसी जीव का प्राण नष्ट करने अथवा बन्धनादिक से कष्ट देने की चिन्ता अर्थात् राग द्वेषादि आश्रवरूप है वह इसलोक और परलोक में जीव अनर्थकारी है उसकी एकाग्र भाव से चित्त करना ही हिमानुबन्धी रौद्रध्यान है। जीव के चित्त में असत्य वचन से अथवा छलादिक के प्रयोग से दूसरे जीव को कष्ट देने का प्रबल अध्यवसाय होता है उस चित्तकी वृत्ति का नाम 'मृपानुबन्धी' रौद्रध्यान है। तीसरा भेद 'स्तेयानुबन्धी' रौद्रध्यान है। उसका स्वरूप यह है कि उस समय जीव के क्रोध या लोभ के वशीभूत होकर दूसरे का द्रव्य हरण करने की प्रबल चिन्ता रहती है। और चौथा शब्दादिक विषय के साधन भूत भौतिक धनकी रक्षा करने निमित्त सब कुटुम्बियों के प्रति दुष्ट चिन्ता करना 'मरत्तणानुबन्धी' रौद्रध्यान है जैसे कि वे लोग जीते रहे तो सब धन ले लेंगे, यदि मर जायें तो अच्छा हो ऐसी २ नीच चिन्ता करते हुये चित्त को उस ओर लगाना।

उपर्युक्त आर्त्तारौद्रध्यान जीवों को बराबर कर्मों के जाल में फँसाये रहता है और कर्म का बोझ बढ़ाये ही जाता है। जिससे वे जीव और अधिक ससार में जन्म जग मृत्यु आदि के कष्ट उठाते रहे। ज्यो २ देश विरति का अधिक होना प्रारम्भ होता है त्यो २ आर्त्तारौद्र ध्यान मन्द होता जाता है और उस समय धर्मध्यान का उदय होकर शुद्ध ध्यान तक पहुँच सकता है। धर्मध्यान और शुद्ध ध्यान को अच्छी तरह से समझना और उसका पूरा ज्ञान होना बहुत ही दुर्लभ है। प्रथम तो इसके समझने के लिये जैनागम के पूरे ज्ञानकी आवश्यकता है। दूसरे इसके सबध में जिन २ विषयों का अनुभव चाहिये उनका खुलासा मेरे एक क्षुद्र लेख से नहीं हो सकता। धर्मध्यान का पहिला भेद 'आज्ञा विचय' है। उसका अर्थ यह है कि जीव ऐसी चिन्ता करता रहे कि अर्हन्त भगवन्त, केवली भगवान् सर्वज्ञ जो आज्ञा कर गये हैं वे सब सत्य हैं किसी कारण किसी की समझ में नहीं आवे तो उसकी बुद्धि

की न्यूनता ही है । इसकाल में संशय मिटाने वाले गुरुका अभाव है । सर्वज्ञों के झूठ बोलने तथा मिथ्या उपदेश करने का कोई कारण नहीं था इत्यादि चिन्ता करते हुये चित्तकी वृत्ति को एकाम्र भाव से स्थिर करके निःसंशय होकर सर्वज्ञोंके कथन पर ध्यान देने का नाम ही 'आज्ञा विचय' है । दूसरा भेद जीव के रागद्वेष कषायादि के कारण अपाय अथवा कष्ट उत्पन्न होते हैं ऐसी चिन्ता करना 'अपाय विचय' नामक दूसरा धर्मध्यान है । इसी तरह जीव के क्षण २ में कर्म के विपाक अथवा फलोदय विचित्र रूप से उत्पन्न होता है अर्थात् कर्म के विपाक से जीव के सुख दुःख उत्पन्न होते हैं निसकारण हर्ष शोक न करके वे मात्र पूर्व कृत कर्म के फल हैं, इस प्रकार की चिन्ता करते रहना ही 'विपाक विचय' नामा तीसरा धर्मध्यान है । लोक अनादि अनन्त है और 'उत्पाद' व्यय 'ध्रुव' रूप सब पदार्थ हैं तथा पुरुषाकार लोक संस्थान है तथा जीव, पुद्गल, धर्मास्ति, अवर्मास्ति, आकाश, काल ये षट्द्रव्यों के लक्षण संस्थानादिक की चिन्ता करना है वही 'संस्थान विचय' नाम का चौथा धर्म ध्यान है ।

ध्यान के अन्तिम विभाग का नाम शुद्ध अर्थात् पवित्र स्वच्छ कहा गया है । यह ध्यान बहुत ऊँचे दर्जे का समझना चाहिये । जब जीव कर्मक्षय करके उच्च कोटि में जान को आरम्भ करता है अर्थात् क्षायिक श्रेणी में चढ़ता हुआ अष्टम गुण स्थान में पहुँचता है उसी समय ऐसा ध्यान व्याता है । उसका प्रथम भेद 'पृथक्त्व वितर्क संप्रविचार' है । प्रत्येक द्रव्य के विषय में उत्पादव्ययध्रुवादि पदार्थ की तथा शब्द से शब्दान्तर अर्थ से अर्थान्तर द्रव्य से द्रव्यान्तर में संक्रमण तथा एक योग से दूसरे योग के विषय में संक्रमण की चिन्ता वितर्क विचार में सहित होकर निर्मल परमात्मतत्त्व अनुभवनय अन्तरंग भावयुक्त आगम के अनुसार होने से 'पृथक्त्व वितर्क संप्रविचार' शुद्ध ध्यान है ।

इसके दूसरे भेद में शुद्ध जीव अपृथक्त्व अर्थात् एकत्व भाव वितर्क के साथ विचार रहित अर्थात् निष्प्रकम्प चित्तहोकर ध्यान करना

है वही एकत्व वितर्क संप्रविचार शुद्ध ध्यान है । और तेरहवें गुणस्थान के अन्त मनोयोग और वचन योग के रुक जाने के पश्चात् कायायोग के रोधण के समय तीसरा सूक्ष्म क्रिया शुद्ध ध्यान होता है । अन्त में विच्छिन्न क्रिया अप्रपाति शुद्ध ध्यान होने से जीव को फिर पीछे गिरने की शंका नहीं रहती है । उस समय जीव चौदह प्रकृति का त्त्य कर्क के क्षीण मोहांश केवल स्वरूप होजाता है । शुद्ध ध्यान के स्वरूप का विना सर्वज्ञ के दूसरा कोई भी पूरा अनुभव नहीं कर सकता । ध्यान का स्वरूप यथा शास्त्र वर्णन करने में असमर्थ हुये है तो दूसरोकी लेखनी का उस ओर प्रयाम करना वृथा है ।

—::* : —

विविध विषय ।

बंबई—मे अपनी कॉन्फरन्स की मैनेजिंग कमेटी शान्ति पूर्वक हो गई जिसके लिए श्री संघ बंबई को बधाई देते हैं । प्रस्तावों की समालोचना पाठकों को दिसम्बर के अंक में शीघ्र ही पढ़ने का मिलेगी ।

फिर होगी—आजकल हमारी स्थानकवासी जैन कॉन्फरन्स का काम इतनी शीघ्रता के साथ हो रहा है कि जिसके कारण भिती फाल्गुण सुदी ३-४-५ को, केवल चार ही महीने के बाद, नीमच में इस की मैनेजिंग कमेटी फिर होगी ।

पात्तिक होगा—जैन-पथ-प्रदर्शक जो अब तक मासिक रूप में आपकी सेवा कर रहा है वह अब शीघ्र ही पात्तिक होगा ।

१०००) रु० का पारितोषिक—हिन्दी संसार के उम धुर-
कवि को श्रीयुक्त बैनी माधो खन्ना बुद्धादेवी, कानपुर, द्वारा दिया

जायगा जिसका “राष्ट्रीय गीत” सबसे अच्छा होगा परीक्षा तिथि महा सुदी ५ नियत की गई है ।

नागपुर—यहां पर कांग्रेस के समय में ओसवाल महासभा की और जैन पोलिटिकल कॉन्फरेन्स की भी एक २ बैठक हुई थी । आशा है इससे ओसवाल जाति और जैन-धर्म की अच्छी उन्नति होगी ।

यादगिरी(दक्षिण)—जिन श्रीमान अमोलक ऋषीजी महाराज नेशास्त्रोद्धार का काम प्रारंभ किया था उसका अन्त करके अब आपने हैदराबाद से यादगिरी की ओर विहार किया है । यह रास्ता कितना कठिन है इसका ध्यान करते ही हमारा तो शरीर कांपता है । सच है बिना परिश्रम किये कब किमने धर्म का प्रचार किया है ।

दादर—बम्बई से विहार करते श्रीमान तपस्वीजी श्री देव जी ऋषीजी महाराज विराज रहे हैं । आपके उपदेश से अकाल पीड़ितों की सहायता के लिए ५०००) रु० संग्रह हो चुका है ।

सितारा (दक्षिण)

हमें यह जान कर बड़ी प्रसन्नता हुई है कि अभी सितारा में विराजमान मुनि श्री १००८ श्री धारीलाल जी का महात्मा गांधी, मौलाना शौकतअली आदि से बड़ा ही प्रभावशाली वार्त्तालाप हुआ है । सितारा में यह सज्जन व्याख्यान देने के लिये गये थे । व्याख्यान के पश्चात् आप लोग मुनि महाराजमें मिलने गये। प्रेमके ऊपर वार्त्तालाप हुआ और मुनि महाराजने प्रेम पर व्याख्यान भी दिया। पुनः महात्मा गांधी जी ने साधुओं के कर्तव्य पर उपदेश दिया । इस वार्त्तालाप से मौलाना अली आदि सज्जन बहुत प्रसन्न हुए । मुनि जी ने एक कविता भी रचाई जिसे पसंद करके प्रचार के लिये मुसलमान भाई लेगये । इस प्रकार सितारा में हिन्दू मुसलमान और जैन नेताओं के मिलन का अपूर्व समारोह हुआ ।

रावलपिंडी—यहां पर ता० ११७ जून १९२० ई० से श्री जैन धर्म प्रचारक सभा ने एक (श्री महावीर जैन पुत्री पाठशाला) खोली है । जिसमें जैन और जैनतर कन्याओं को सांसारिक और धार्मिक शिक्षा नि शुल्क दी जाती है और साथ ही पढ़ाई का सामान भी दिया जाता है । इस समय ४ अध्यापिका काम कर रही हैं और कन्याओं की संख्या लगभग ७५ के है । पाठशाला के लिये एक योग्य अध्यापिका और द्रव्य की सहायता की आवश्यकता है

दिल्ली—श्रीमान अमीरुद्दीन जी महाराज विराज रहे हैं और पूज्य श्री एकलिंगदास जी महाराज के शिष्य श्रीमान मोतीलाल जी महाराज पहुंचने वाले हैं ।

द्विदोन सिटी—श्रीमान् माधवमुनि जी महाराज विराजते हैं । आप शायद चैत के अन्त तक रतलाम पहुंच जायेंगे ।

पाली—पूज्य श्री मुन्नालाल जी और श्रीमान् चौथमल जी महाराज तथा श्रीमती सतीजी श्री प्रमकुवरि जी और श्रीमती महताव कुंवरि जी विराजती हैं ।

जोधपुर—जोधपुर श्रीमान् दौलतशर्मा जी महाराज विराज रहे हैं ।

भीनासर—पूज्य श्री जवाहरलाल जी महाराज के विराजने के समाचार थे ।



* साहित्य अवलोकन । *

निबन्ध रत्नमाला—यह पुस्तक एक जैन विदुषी पंडिता चंदा-बाईकी लिखी हुई है। कोई २० विषयों पर बहुत ही अच्छे २ लेख हैं जो कि स्त्रियों के लिए लिखे गए हैं किन्तु है पुरुषों को भी उपयोगी। पुस्तक बहुत अच्छी है। छपाई सफाई उत्तम है। मूल्य ॥)

पता—प्रेम मन्दिर, आगरा।

नकली और असली धर्मात्मा—यह पुस्तक उपन्यास के रूप में बा० सूरजभातु जी वकील ने लिखी है और चन्द्रसैन जी जैन वैद्य, इटावा ने इसे प्रकाशित किया है। पुस्तक में यह अच्छी तरह दिखाया गया है कि आजकल धर्मात्मा बननेवाले कैसे २ काम किया करते हैं और असली धर्मात्मा किसे कहते हैं। पढ़ने योग्य पुस्तक है। मूल्य भी बहुत कम केवल ॥) है।

जैन पुस्तक प्रकाशक समिति व्यावर—से हमें कुछ पुस्तकें प्राप्त हुई हैं उनका संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जाता है।

(१) जम्बुगुण रत्नमाला—इसमें जम्बु स्वामी का संक्षिप्त चरित्र कविता में है। चरित्र पुराने ढंग से लिखा है लेकिन तो भी उपदेश प्रद है मूल्य ॥) पृष्ठ ९०

(२) श्रावक धर्म दर्पण—श्रावकों की क्रिया आदि करीब १०० विषय सम्पन्न यह एक अति उपयोगी पुस्तक है। दो एक जगह कुछ विषयों में गड़बड़ी है आशा है समिति आगामी संस्करण में ठीक कर देगी। मूल्य ॥)

वैराग्यशतक—यह पुस्तक बहुत ही उपयोगी और शिक्षा सम्पन्न है । पृष्ठ २४ मू० -)

(४) **जैन शिक्षण पाठमाला**—पाठशाला में पढ़ाने के योग्य इस पुस्तक में बालको के काम की बातें हैं । पृष्ठ ६८ मू० -)

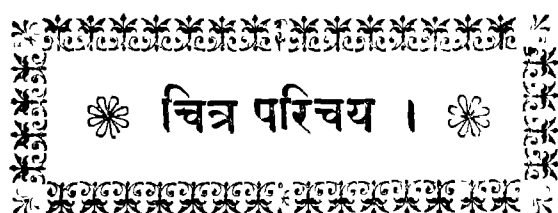
ज्योतिप्रसाद भजनमाला—यह दिगम्बर जैन सम्प्रदाय के प्रसिद्ध कवि वा० ज्योतिप्रसाद के बनाए ५० भजनो का संग्रह है । इसकी प्रशंसा करना व्यर्थ है वावू ज्योतिप्रसाद जी का नाम ही इसका अच्छा प्रमाण है । मूल्य १) है ।

पता—जैसवाल जैन कार्यालय, मानपाड़ा—आगरा ।

अहिंसा—यह एक नवीन साप्ताहिक पत्र स्याद्धाद विद्यालय काशी से निकल रहा है । सम्पादक है ब्रह्मचारी ज्ञानानन्द जी न्यायतीर्थ । भागतवर्ष की इस समय जैमी अवस्था है उसे देखकर कहना पड़ता है कि न्यायतीर्थजी का यह कार्य बहुत ही श्लाघ्य है । अहिंसा सिद्धान्त के मानने वाले प्रत्येक सज्जन का यह प्रधान कर्तव्य है कि वह ३॥) देकर इसका ग्राहक तथा ५) में इसका सभासद बन जावे ।

लोकमान्य तिलक—हमें चित्रशाला प्रेस पूना से स्वर्गवासी लोकमान्य का एक चित्र प्राप्त हुआ है । चित्र सब तरह से सुन्दर है मूल्य ॥)

हरिदास एण्ड कम्पनी कलकत्ता—की पुस्तके हमें मालो-चनार्थ प्राप्त हुई है स्थानाभाव से इतना ही लिखना चाहते हैं कि इसकी पुस्तके छपाई की सुन्दरता के साथ अच्छे विषयो से भरी होती हैं । आशा है प्रदर्शक के पाठक पुस्तके मंगाकर एकवार अवश्य ही परीक्षा करके देख लेंगे ।



(१) सेठी कामदेव—आपका जीवन चरित्र “धर्म परिज्ञा” शीर्षक वाली कविता से प्राप्त होगा ।

२—स्वर्गवासी दानवीर राजा बहादुर लाला सुखदेवमहायजी (हैद्राबाद स्टेट)—ऐसा कौन स्थानकवासी जैन है जो आपके नाम और काम से परिचित न होगा । आपने जो उपकार हमारी समाज पर करे हैं वह किस को ज्ञात नहीं है । हमें दुःख इस बात का है कि शास्त्रोद्धार के कार्य को जिस उत्साह और प्रेम से आपने श्रीमान् अमोलक रिपी जी महाराज से प्रार्थना करके प्रारम्भ कराया था वह आपके सामने तक पूर्ण न हो सका । आपने अपनी आयु में लाखों ही रुपया ज्ञान प्रचार में लगाया । यदि यह कहा जाय तो भी अनुचित न होगा कि जो हिन्दी साहित्य आज स्थानकवासी जैन संप्रदाय को पढ़ने और देखने के लिए प्राप्त है वह हमारे इन स्वर्गवासी राजा बहादुर और जैन मुनि पंडित श्री अमोलक रिपी जी महाराज की ही पूर्ण कृपा का फल है ।

३—सेठ ज्वालाप्रसाद जी (हैद्राबाद स्टेट)—आप उन्हीं स्वर्गवासी राजा बहादुर के सुपुत्र हैं जिनका परिचय हम ऊपर लिख चुके हैं । आप में भी आपके पिता श्री के अनुसार धर्म प्रेम कूट २ कर भरा है । आपकी आयु इस समय २७ वर्ष की है । जिस उत्साह और प्रेम के साथ आपके पूज्य पिता श्री ने जैन शास्त्रोद्धार का काम प्रारम्भ किया था उससे अधिक उत्साह और प्रेम के साथ आपने उसका अंत किया, जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि जैन शास्त्रोद्धार का काम

जिम समय प्रारंभ किया गया था उस समय इस काम में लगभग २००००) रु० के खर्च का अनुमान किया था लेकिन फिर महायुद्ध के यकायक छिड़ जाने से इस काम में आपका ४२०००) रु० खर्चा हुआ है। आपने जो “जैन शास्त्रोद्धार” प्रेस लगभग पांच वर्ष से शास्त्रों के छापने के लिए खोला था वह अब जैन-पथ-प्रदर्शक की निर्भीक नीति और रीति को देख कर दिया है। आपकी पूर्ण इच्छा है कि यह पत्र अच्छी तरह से समाज की सेवा करे।

(४) एक बूंद पानी का चित्र—इसका परिचय चित्र में ही दिया हुआ है।

५—श्रीशुत सेठ मोतीलालजी जैन—आप सितारा (हर्षनाथ) के रहने वाले एक प्रसिद्ध धनिक हैं। आप नगर सेठ, आनरेरी मजिस्ट्रेट और चुगी के और पिजरापोल के मन्त्री हैं। स्वर्गवासी शास्त्रों में सेठ बालमुकन्दजी के आप सुपुत्र हैं। सब से बड़ी बात यह है कि आप एक गुप्तदानी हैं इस प्रकार आप एक धनी, मानी और दानी व्यक्ति हैं। बम्बई में जो कमेटी हुई थी उसके सभापति आप चुने गये थे।

६—स्वामी विरूपान्त वडियर—स्वामी जी धारवार जिले (बम्बई प्रदेश) के चौड्य्या दानपुर नामक ग्राम के एक प्रतिष्ठित घराने में १८९१ में जन्मे। आप बड़े भारी विद्वान् हैं। छोटीही आयु में पारंगत और मराठी पढ़के आप संस्कृत पढ़ने लगेथे और उसमें आपने “वसुधै कुरु कुम्भम्” की पदवी प्राप्त की है। उसके पश्चात् भी “परिचय”, “वेद तीर्थ”, “विद्यानिधि” जैसी सामान्य पदवियों से आप अलङ्कृत हो चुके हैं। वेदतीर्थ की परीक्षा उत्तीर्ण करते समय ही आपका पद-स्वर्णपदक भी मिला था। १९१६ में आप संस्कृत कालेज इन्दौर में प्रोफ़ेसर हुये पुन कई विद्यालयों के एम० ए० के परीक्षक नियत हुये। जैन साहित्य में आपको कितना प्रेम और श्रद्धा है वह आपकी अनेक अंकों में आपके जो दो लेख छपे हैं उसीसे मालूम कर सकते हैं।

७-मैहर नरेश राजा ब्रजनाथसिंहजी बहादुर-आप कच्छवा राजपूत जयपुर राज्यावतंश हैं । आपका जन्म २२ फरवरी १८९६ ई० को हुआ था तथा २४ जनवरी १९१७ को आप राज्याधिकारी हुये हैं । ९ तोपो से आपकी सलामी होती है । आप चित्रकला के प्रेमी अश्वारोहण और तैरने में बड़े प्रवीण हैं आप शिक्षा के पक्षपाती, प्रजा वत्सल और राज्य काज में पटु हैं । सब से बड़ी बात आप में 'अहिंसा प्रेम' हैं । अभी आपने अपने राज्य में हमारी समाज के स्तम्भ शेट मेघजी भाई थोभण, श्रीयुत शान्तिदास आसकरण जे० पी० और श्रीयुत दुर्लभ जी भाई जोहरीकी प्रार्थना पर ध्यान देकर वक्रे आदिकी सम्पूर्ण हिंसा को सर्वथा बंद कर दिया है और आज्ञा प्रचारित करती है कि यदि कोई आदमी मैहर राज्य में हिंसा करेगा तो वह ६ मास का कारावास और ५०) दंड का भागी होगा । आपके इस कृत्य से हमें जो प्रसन्नता हुई है। उसके लिये हम राजा साहिबके सदैवही ऋणी रहेंगे ।

८-दीवान हीराजान्तजी गणेश भाई अञ्जरिया-आप मैहर राज्य के दीवान हैं राजकोट (काठियावाड़) के बड़नगर में १८७६ में आपका जन्म हुआ था और १९०० में आपने बड़ौदा कालेज से बी० ए० की परीक्षा पास की थी । १९०२ में आप काठियावाड़ पोलिटिकल एजन्सी में नौकर हुए और अपने परिश्रम और योग्यता के बल बूते पर एक साधारण कर्मी से बढ़ कर दीवान की पदवीको पहुंच गए हैं । आपकी योग्यता का इससे अधिक और क्या प्रमाण दिया जा सकता है । आप की कृपा से ही मैहर राज्य में "अहिंसा पर्मे शर्मः" का पूर्ण पूचार हुआ है ।

(६) मेघ कुंवर के पहिले जन्म का एक दृश्य—परिचय मेघ चरित्र में ।

१० श्रीयुत मुंशी रफातुल्ला खां साहब—

आप ग्वालियर राज्यान्तर्गत मन्दसौर नामक जिले के जिलाधीश हैं । आप अहिंसा और न्याय के बड़े पक्षपाती हैं साथ ही आप जैन धर्म के बड़े प्रेमी हैं । इस वर्ष श्रीमान् जैन मुनि श्री चम्पालाल जी महाराज ने मन्दसौर में अपना चातुर्मास आपके ही अधिक अग्रह करने से किया था । उनके व्याख्यान और दर्शनो का लाभ लेने के लिये जो निमन्त्रण कार्ड आपने छपवा कर भेजा था वैसा निमन्त्रण शायद ही कोई भेजता । इससे आप सोच सकते हैं कि इनके दिल में जैन धर्म और जैन साधुओं के लिये कितनी भक्ति है । आप बड़े ही दीनबन्धु और प्रजा वत्सल हैं ।

आपने श्रीमान् चम्पालाल जी महाराज के उपदेश में और अपने प्रयत्न में राज्य की आज्ञा द्वारा अपने जिले में छ. २ मील तक पशु वन और आवेष्ट बन्द करा दिया । इसी के लिये आपने स्थान स्थान पर पत्थर लगवा दिए हैं । यवन होकर भी आपका इतना दया प्रेमी होना एक अपूर्व बात है ।

११—श्री कन्हैयालालजी जैन, कस्तुरी आपका जन्म सन् १९५७ में हुआ है । अभी आपकी आयु बहुत छोटी है, तिस पर भी आपने जैसी उन्नति की है उसे देख कर चकित होना पड़ता है । आप हिन्दी के एक होनहार कवि हैं । आपकी कविता बहुत अच्छी होती है । जैन-पथ-प्रदर्शक पर समय २ पर आप कृपा किया करते हैं । आप कई पुस्तकें भी लिख चुके हैं । बड़े उत्साही और कर्तव्यशील हैं । भविष्य में आप से बड़ी २ आशाएँ हैं ।

शोक !

शोक !!

महाशोक !!!

इस विशेषांक में हमें यह शोक समाचार आपको सुनाते दुःख होता है कि जैनपथ प्रदर्शक के स्तम्भ श्रीमान् तपस्वी जी श्री देव जी ऋषीजी महाराज के शिष्य श्रीमान् प्रताप ऋषी जी का दादर (बम्बई) में देहान्त हो गया । आप एक बहुत ही होनहार साधु थे । आपने अपना समय निकट जान आलोचन इत्यादि करके संधारा भी किया था । आपका अग्नि संस्कार श्री मधु बम्बई ने किया था ।

खुल गया !

खुल गया !!

खुल गया !!!

आप यह सुन कर बहुत ही खुश होंगे कि हैद्राबाद में जो “शास्त्रोद्धार” नाम का प्रेस राजा बहादुर लाला सुखदेव सहाय जी ज्वालाप्रसाद जी ने खोला था उस प्रेस का अब सब प्रबन्ध राजा बहादुर ने हमारे हाथ दे दिया है सो हम उस प्रेस को आगरे में ले आये हैं अतएव आप से निवेदन है कि यदि आपको ग्रन्थ, ट्रेकु, विज्ञापन लिफाफे, पोस्टकार्ड लैटर पेपर सुन्दर और शुद्ध छपाने हों तो हमारे पास भेजिये हम बहुत ही सुन्दर शुद्ध और समय पर आपके पास सस्ते और अच्छे छाप कर भेज सकेंगे। हमारा विचार भी यह ही है कि हम इस प्रेस द्वारा सबसे प्रथम अपनी जैन समाज का काम छापें और पीछे समय मिलने पर अन्यो का ।

हमारे यहां काम भेजने से आपको यह २ सुविधायें होंगी:—

(१) आपका काम घर का सा काम समझ कर किया जायगा ।

(२) हमारे यहां शुद्धता और सुन्दरता पर पूरा ध्यान दिया जायगा ।

(३) यदि किसी ग्रन्थ की भाषा सुन्दर न होगी तो वह भी शुद्ध की जायगी ।

(४) यदि कोई विषय ग्रन्थ में शास्त्रों के प्रतिकूल होगा तो उसकी भी आपको सूचना कर दी जायगी और फिर जहां तक होगा शुद्ध करा दिया जायगा ।

(५) हम स्वयं प्रथम हर एक ग्रन्थ को पढ़ कर जो कुछ घटाना बढ़ाना हुआ करेगा आपसे आज्ञा लेकर घटा बढ़ा देंगे ।

(६) किस ग्रन्थ की कितनी जरूरत है इत्यादि सूचना भी हम अपने अनुभव से देते रहेंगे ।

(७) यदि आपको गुजराती, मराठी, अंग्रेजी, बंगला के ग्रन्थों का अनुवाद कराना होगा तो हम इसका भी प्रबंध कर सकेंगे त्रिमने आपका अनुवाद बहुत ही सुन्दर और सरल भाषा में हो जायगा ।

निवेदक—

पद्मसिंह जैन ।

बिना गुरु के वैद्य बनानेवाला अपूर्व ग्रन्थ ।

चिकित्सा चन्द्रोदय ।

(पहला और दूसरा भाग)

आज तक हिन्दी में एक भी पुस्तक ऐसी नहीं निकली जिस के सहारे कोई शख्स बिना उस्ताद के वैद्यक जैसे कठिन विषय को समझ और सीख सके। लेकिन ने ये दोनों भाग इसी गुरज से लिखे हैं, कि प्रत्येक गृहस्थ और त्यागी, चाहे वह चिकित्सा-व्यवसाय करता हो और चाह न करता हो, अपने और दुनियाँ के भले के लिये, बिना गुरु के, थोड़े ही कष्ट से, मनुष्यमात्र के लिये आवश्यक वैद्यक विद्या को सीख सके। जो तारीफ आप की जाती है, वह तारीफ सच्ची नहीं समझी जाती; तारीफ वही सच्ची होती है, जो दूसरों के द्वारा की जाती है। इसलिये हम अनेक प्रशंसापत्रों में से चन्द प्रशंसापत्र नीचे अविकल छाप देते हैं। उनसे समझदार लोग समझलेंगे कि, वास्तव में ये दोनों भाग कैसे हैं।

ये दोनों पुस्तकें धडाधड बिक रही हैं, इसलिये थोड़े दिनों बाद इनका मिलना कठिन हो जायगा। कागज़ दिन व दिन महंगा होता जाता है, इसलिये अन्वत तो छपना ही कठिन है और यदि छपी भी तो ख़ूबों के दाम हा जायगे। इसलिये जो विद्याव्यसनी हैं, उन्हें इनके खरीदने में विलम्ब न करना चाहिये। शौकीनों को इन दोनों भागों के साथ ससार प्रसिद्ध पुस्तक "स्वास्थ्यरत्ना" भी खरीद लेनी चाहिये। वह प्रत्येक मनुष्यों के लिये ईश्वर का सच्चा आशीर्वाद है।

नाट—सजिले तीनों पुस्तकों का दाम ३॥॥+६+३॥= १३ है। जो तीनों एक साथ खरीदेंगे, उन्हें १॥=) कमाशन मिलेगा यानी उन्हें १३ के स्थान में १२॥=) दन होंगे। डाकखर्च खरीदारों के जिम्मे।

पता—हरिदास एण्ड कम्पनी २०१, हरिसन रोड कलकत्ता ।

प्रशंसा पत्र ।

सम्प्रत के धुन्धर विद्वानों में अग्रगण्य, कलकत्ता यूनी-
वर्सिटी के वेद-व्याख्याता पण्डितवर भीमसेन जी शर्मा के सुपुत्र
सुविख्यात विद्वान् माननीय ब्रह्मदेव जी शर्मा शास्त्री और काव्य-
तीर्थ अपने जगत् प्रसिद्ध पत्र “ब्राह्मण सर्वस्व” में “चिकित्सा
चन्द्रोदय” की तारीक में क्या लिखते हैं देखिये:—

“जिस चिकित्सा चन्द्रोदय के प्रथम भाग की आलोचना
हम गताङ्क में निकाल चुके हैं, दर्प की बात है कि उसीका दूसरा
भाग भी बड़ी सज्जधजके साथ प्रकाशित होगया। प्रस्तुत भाग पहिले
भाग की अपेक्षा बड़ा है। इसमें, विषय-सूचा और भूमिका को
छोड़कर, कोई ६०० पृष्ठ हैं। इसी से इसका महत्त्व जाना जा
सकता है। प्रस्तुत भाग २२ अध्यायों में विभक्त है। इसमें सब
प्रकार के ज्वरों का कारण निदान और चिकित्सा का बड़े विस्तार
से वर्णन किया गया है। अनाड़ी से अनाड़ी मनुष्य भी इस पुस्तक
को देखकर कठिन से कठिन ज्वरों की बेखरके चिकित्सा कर
सकता है। ज्वर ही सर्व रोगों में प्रधान है, अतः प्रस्तुत भाग में
उसी का विस्तृत वर्णन किया गया है। एक बात इस पुस्तक में
यह बड़ा अच्छी है कि, ज्वर चिकित्सा की जो औषधियाँ लिखी
गई ह, वे सभी उक्त वैद्य महोदय की या तो अनुभूत हैं या कम से
कम विश्वसनीय हैं, यन्त्र मन्त्र टांके आदि भी सभी इसमें लिखे
गये हैं, और सचमुच बहुत सी अवस्थाओं में इनसे काफी लाभ
पहुंचता है। पुस्तक का प्रथम भाग तो अनेक ज्ञातव्य बातों से
पूर्ण होने के कारण एक प्रकार से पुस्तक की भूमिका मात्र ही
कहा जा सकता है; पर पुस्तक का प्रारम्भ इसी भाग से हुआ है।
हम मुक्त कण्ठ से कह सकते हैं कि, यह ग्रन्थ अब तक प्रकाशित

पता—हरिदास एण्ड कम्पनी २०१, हरिसन रोड कलकत्ता ।

वैद्यक-विषयक हिन्दी ग्रन्थों में सर्वोत्तम है। इसकी टक्कर का हिन्दी भाषा में दूसरा ग्रन्थ नहीं है। सम्पूर्ण पुस्तक के प्रकाशित हो जाने पर तो सचमुच चिकित्सा रूपी चन्द्रका उदय ही हो जायगा। पर अभी तक भी जिन भाग ठग रूपी कलाओं का उदय हुआ है, उन्हीं से राग रूपी रजनी अन्तर्हित हो गई है। पुस्तक के बीसवें अध्याय में बालकों के भिन्न भिन्न रागों की चिकित्सा का प्रकार लिखा गया है। इस तरह अष्टांग आयुर्वेद के एक अङ्ग कैमारभृत्य का भी समावेश इसमें हा गया है। पुस्तक की भाषा सरल, सुन्दर और रोचक है। सम्पूर्ण पुस्तक सुन्दर चिकने कागज़ पर बढ़िया टाइप से छपी गई है। इस तरह पुस्तक का बाह्य और आभ्यन्तर दोनों ही सुन्दर हैं। प्रत्येक हिन्दी प्रेमी को साधारणतः और विशेषतः चिकित्सा कर्म सीखने की इच्छा वालों को इस पुस्तक की एक प्रति अवश्य अपने पास रखनी चाहिये। पुस्तक का विस्तार और सुन्दरता देखने हुए मूल्य ५) कुछ भी अधिक नहीं है।

नामी ग्रामी विद्वान् और अनुभवो सम्पादक पण्डितवर नारायण दत्त जी शर्मा मशहूर “धर्माभ्युदय” में लिखते हैं:—

“हिन्दी-समर में कलकत्ते के बाबू हरिदास जी वैद्य का नाम प्रायः बहुत कुछ प्रसिद्ध है। उन्होंने जो हिन्दी भाषा में बढ़िया बढ़िया पुस्तकें निकाल कर युगान्तर पैदा किया है, इसके लिये उनको जितना भी धन्यवाद दिया जाय, थोड़ा ही है। उनकी पुस्तकें हाथ में लेकर फिर छोड़ने का चित्त नहीं चाहता। लेखन-कला में वे बड़े ही सिद्धहस्त हैं। उन्होंने अपनी उस सिद्धहस्त लेखनी से ही इस अमूल्य ग्रन्थ को लिखा है।

अनेक-प्रकार के ज्वरों का खूब ही विस्तृत-रूप से वर्णन है; साथ ही उनकी चिकित्सा भी है। ऐसे अमूल्य और अलभ्य ग्रन्थ

पता—हरिदास पण्ड कम्पनी २०१, हरिसन रोड कलकत्ता।

की छुपाई सफाई भी वैद्य महाशय ने अद्वितीय की है। कागज बड़ा ही बढ़िया है। "निवेदन" ब्ल्यू स्याही में "विषय सूची" ब्ल्यू और लाल में तथा पुस्तक बहुत हा बढ़िया काली स्याही में छपा गई है। प्रत्येक राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रेमी को पुस्तक मंगाकर पढ़नी चाहिये। साथ ही हिन्दी साहित्य सम्मेलन और आयुर्वेद विद्यालयों में इसे पाठ्य पुस्तकों (Course) में रखना चाहिये।

ब्राह्मी औपध्यालय जलाली जिला अलीगढ़ के अध्यक्ष चिकित्सक चूडामणि, धर्मोपदेशक पण्डितवर चन्द्रशेखर जी शर्मा चिकित्सा चन्द्रोदय को दो घर पढ़कर लिखते हैं:—

हमने आपके 'चिकित्साचन्द्रोदय' दोनों भाग पढ़े। हिन्दी भाषा में वैद्यक-विषयक आज तक तो ऐसी पुस्तक प्रकाशित हुई नहीं। धन्य है आपके विस्तृत ज्ञान, उतने बड़े लेखन-परिश्रम एवं ललित लेखनी को। सर्वज्ञ पूण वैद्य बनने के लिये, हमारी राय में, "चिकित्साचन्द्रोदय" कुल भाग पढ़ लने अलम होंगे। वैद्यक कालेजों तथा आयुर्वेदिक भारतीय पाठशालाओं में "चिकित्सा चन्द्रोदय" पढ़ा देने पर योग्य वैद्य बन कर निकलेगे। आप इसके कुल भाग लिख डालें। भारतीय विद्वान् वैद्य अवश्य आपके परिश्रम व योग्यता का कदर करेंगे। मैं जिन दो वैद्यक परीक्षा समितियों का मेम्बर हूँ उन दोनों को मैंने चिकित्सा चन्द्रोदयका कोर्स (Course) में शामिल करने के वास्ते साग्रह अपनी अनुमति लिख भेजी है। यह बात मैं आपको किनी लालच वश नहीं लिख रहा हूँ। वास्तव में पुस्तक ही ऐसी प्रशंसनीय और उत्तम है।"

पता—हरिदाम एण्ड कम्पनी २०१,

हरिसन रोड, कलकत्ता।

कर्मयोगः कर्मयोगः कर्मयोगः

—१५५—

[illegible]

| 11月 | 11月 | 11月 | 11月 | 11月

ମହାବଳେଷୁ ମହାବଳେଷୁ ମହାବଳେଷୁ ମହାବଳେଷୁ ମହାବଳେଷୁ

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

THE UNIVERSITY OF CHICAGO PRESS

॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

नमः—सुतकृत्वा तं च भूय उवाच ॥ सावित्र्य प्रसादं ह्वे

[illegible][illegible]

२ श्रीगुप्त मुन्शी केसरीमल जी मोतीलाल राँका

सहायक मैनेजर, पुस्तक प्रकाशक

३ „ जुगलकिशोर जी राँका-पुस्तक फ़िल्म

४ „ रत्नचन्द्र जी मास्टर-कूटेश्वर-अनुवादक

५ „ मास्टर मांगीलाल जी, प्रचारक

६ „ सूखीलाल जी कोठारी-सहायक

७ „ सूरजमल जी गुलाबचन्द जी राघवसनपैट } प्रचारक

„ जैसराज जी देवरा, बंगलोर

इनके सिवाय अन्य सज्जन भी हमको पूरी सहायता दे रहे हैं किन्तु स्थानाभाव के कारण हम उनका नाम नहीं दे सके हैं।

आगामी साल से इस संस्थाके स्थग्न तपस्वी जी महाराज श्री श्री १००८ श्रीदेवजी ऋषोजी समझे जायेंगे और तपस्वी जी श्री का शुभ नाम भविष्य की प्रत्येक पुस्तक में छपता रहेगा।

इस सन्निवृत्ति रिपोर्ट में हम सर्व प्रकार के सहायकों के शुभनाम प्रकट करने में असमर्थ हैं इसलिये क्षमा चाहते हैं। उर्रोक्त सहायकों व अन्य सब प्रकार के सहायकों को उनकी साहित्य प्रचार की सेवाओं के उपलक्ष में धन्यवाद अर्पण करते हैं आशा है कि इस साहित्य प्रचार के कार्य में हमारे सर्व प्रकार के सहायक गण विशेष सहायता प्रदान करेंगे- क्या अन्य साहित्य प्रेमियों इस कार्य में हमारा हाथ बँटाकर जैन साहित्य के उद्धार व प्रचार में सहायता देंगे ?

इस समय ६ पुस्तकें प्रेस में हैं और हमारे पास छपने को खुनी हुई २१ पुस्तकें रक्खी हैं जिसमें से एक पुस्तक "कर्त्तव्य कौमुदी" भी है-इस मेंहरी के समय में केवल इस एक पुस्तक के छपवाने में १५००] लगभग की आवश्यकता है- संस्था को केवल ४७२] ०० लेने हैं इसमें से कम से कम ३००] रुपये छपने को गई हुई पुस्तकों के लिये चाहिये-इस हिसाब से केवल १७२] संस्थाका शेष रहेगा-अतः समाज के धनाढ्यों को शीघ्रता से दान देकर छपने को रक्खी हुई पुस्तकों के छपवाने में हमें समर्थ बनाना चाहिये। ताकि संस्था विशेष रूप से साहित्य प्रचार कर सके।

चतुर्विध सघके लघुसेवक

साहित्य सेवी-सिरेमल बोहरा, केसरीमल मोतीलाल राँका

व्याघर (राजपूताना,)

— १७७ —

योवन विलास

गारे खूबसूरत, हाने की दवा

योवन विलास दवा का दुनियां में नाम है ।

ऐसी अजीब चीज का शौहरा तमाम है ॥

देखो जिसे वहाँ है दिलो जां से कद्रवां ।

प्रादर हमारे योवन का हर खास आम है ॥

इस "दवा" को चहरे पर लगाने से चहरे के मुहांसे-झीप, भाई-बिस्ती खुशकी आदि जितनी शिकायतें हों सब जाती रहती हैं चहरा साफ, सुथरा, और चमकदार निकल आता है की० फी० शीशी १) डांक खर्च १ से ३ तक १) दरजन २॥) डांक खर्च मुआफ

नेत्र उज्जल अंजन

आंखकी रोशनी दुनियां में सबसे बड़ी चीज है ।

यों तो आदमी के शरीर में जितनी इन्द्री हैं सबही ऐसी हैं कि अगर उनमें से एक भी बेकार हो जावे तो आदमी का जिन्दगी खराब होजाती है मगर आंखों की रोशनी अगर कम हो जावे तो दुनियां 'अंधेरी' मालूम होती है । इसलिए आपको अपनी आंखों की बहुत ज्यादा हिफाजत रखनी चाहिये । इस अंजन के इस्तैमाल से आला, फूली, धुन्ध, या मोनिया बिन्दु पानीजाना वगैरह बगै-रह जाते रहते हैं, याड़े दिनों के इस्तैमाल से रोशनी बहुत तेज हो जाती है और चश्मे की जरूरत नहीं रहती है । कीमत फी शीशी १) डांक खर्च चार आना । माल मंगाने का पता—

जैन महावैद्यकाय घीथामंडी रोड मथुरा ।



(बिना अनुपान की दवा)

यह स्वादिष्ट और सुगन्धित दवा है, जिसके सेवन करने से कफ, खांसी, हैजा, दमा, शूल, संग्रहणी, अतिसार, पेट का दर्द, बालकों के हरे पीले दस्त, इन्फ्लूएन्जा इत्यादि रोगों को शर्तिया फायदा होता है, मूल्य ॥) डाक खर्च १ से २ तक ≡)



दाद की दवा ।

बिना जलन और तकलीफ के दाद को २४ घंटे में आराम करने वाली सिर्फ यही एक दवा है, मूल्य फी शीशी ।) डा. ख. १ से २ तक ≡) १२ लेने से २।) में घर बैठे देंगे ।



दुबले पतले और सदैव रोगी रहने वाले बच्चों को मोटा ताजी और तन्दुरुस्त बनाना हो तो इस मीठी दवा को मंगाकर पिलाइये, बच्चे इसे खुशी से पीते हैं, दाम फी शीशी ।।।) डा. ख. ।२)

पूरा हाल जानने के लिये बड़ा सूचीपत्र मंगाकर देखिये फत मिलेगा ।

पता — सुख संचारक कम्पनी, मधुरा ।

रत्न और रावण

पुस्तक देखो, अगाध संसार की दुष्ट कलनापय लहरों
में आप ज़रूर बच जायेंगे ।

पुस्तक का आकर डिमाई अष्टपत्री है । अच्छा कागज़
पक्की जिल्द मूल्य २) रुपये ।

यदि हमारे आनंदकनिग्रह औपचारिक में से आप पांच
रुपये की दवा खरीदेंगे, तो आपको यह पुस्तक भेंट मिलेगी ।

दवा का हाल जानने के लिये हमारा सूचीपत्र मँगा कर
देखने की प्रार्थना है ।

पना—

वैद्यशास्त्री मणिशङ्कर गोविन्द जी,

जामनगर—काठियावाड़ ।

(१) जम्बू गुण रत्न ॥ ५

(२) सुदर्शन सेठ चरित्र	पृष्ठ ४० =) ११ कारी १।)
(३) आदिका धर्म दर्पण	पृष्ठ ५० =) १० ,, १।)
(४) जैन शिक्षण पाठमाला	पृष्ठ ६८ =) ११ ,, १।)
(५) वैराग्य शतक	पृष्ठ २४ -) १०० ,, ४।)
(६) मार्गानुसारी के ३४ गुण	पृष्ठ १६ -) १०० ,, ४।)
(७) जैन दर्शन और जैन धर्म	पृष्ठ १६)॥ १०० ,, २॥।)
(८) शालोपयोगी जैन प्रश्नोत्तर	मूल्य = ॥
(९) हितोपदेश रत्नावली	मूल्य =)

इसके अलावा हर समय नई २ पुस्तकें छपती रहती है य
अधिक हाल जानना हो तो)॥ का टिकट भेज कर बड़ा सूचीपत्र
मंगा कर देखिये ।

पर्युषण के कार्ड और पत्र भी हमी से मंगाइये ।

हमारा पता याद रखिये--

मैनेजर श्री जैन पुस्तक प्रकाशक समिति

ध्यावर (राजपूताना

